CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

To Shri Padman Lal Sharma

वेदान्त प्रवेशिका

Gateway to the realisation of self,
the final beautitude
(Being the final aim of human life)

लेखक

"मृत्यु मुखात् प्रमुक्त"

प्रभु दत्त ग्रोवर

शान्त कुटीर

राम बाग़ (दयानन्द वाटिका), सब्ज़ी मण्डी, देहली-६

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बोधयन्तः परस्परम्" (ग० १०-९)

297

वेदान्त प्रवेशिका

Gateway to the realisation of self,

the final beautitude

Being the final aim of human life)

लेखक

"मृत्यु मुखात् प्रमुक्त"

प्रभुदत्त गोयल

Bhagwan's Shankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya

160

शान्त कुटीर

राम बाग़ (दयानन्द वाटिका), सब्ज़ी मण्डी, देहली-६

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रदीप प्रिन्टर्ज़,

६ राम बाग़ पुरानी रोहतक रोड

देहली-६

२१ जनवरी १९६०, प्रथम संस्करण, १०००

160

मूल्य १) एक रुपया

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुभ आशीर्वाद

परम पूज्य श्री १०८ वेदालंकार महामण्डलेश्वर श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज, वेद मन्दिर काकरिया रोड, अहमदाबाद (गुजरात) की ओर से।

ॐ १०-३-५९ देहली

ग्रोवर साहब अध्यात्म वाद के बड़े प्रेमी हैं। अध्यात्म वाद पर इन्होंने जो अपने विचार प्रकट किए हैं, उन का कुछ अंश मैंने देखा तथा सुना है। पुस्तक, साधकों के लिए अति उपयोगी है। प्रमेय की सिद्धि प्रमाण से होती है, परन्तु ब्रह्म तत्त्व किसी प्रमाण का विषय नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष आदि प्रमाण रूपादिमत वस्तु को विषय करते हैं। ब्रह्म निरूप, निश्कल, निश्क्रय तत्त्व है। अविद्या जनित कर्तृत्व, भोक्तृत्व की निवृत्ति ही ब्रह्मदर्शन या आत्म दर्शन है। आत्म दर्शन से ही जीव बन्धन-मुक्त हो सकता है। बन्धन-मुक्ति प्रत्येक जीव को अभिलषित है। दुख निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति प्रत्येक जीव चाहता है, इसी बात का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। मेरी यह शुभ कामना तथा शुभ आशीर्वाद है, ग्रोवर साहब इस अपने कार्य में अवश्य सफल होंगे ॥

(हस्ताक्षर) स्वामी सर्वानन्द

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
१३	आखरी	जास	साथ
१६	१८	है हैं	हैं
२१	७	शकि	शक्ति
२७	१५	प्रतीत हों रहा है	प्रतीत हो रहा
३३	१८	जब की	जब कि
४३	१७	(अन्मि)	(अन्तिम)
,,	१९	आबश्यक	आवश्यक
४९	५	श्रद्धा समाधान	श्रद्धा, समाधान
५१	१९	दृढ़े अपरोक्ष	दृढ़ अपरोक्ष
५६	१	वह	यह
५७	१३	यह को	यह तो
५८	८	(३)	(४)
,,	१३	न होने ने	न होने से
८२	३	काएगा	आएगा
९३	२५	"वृतिय"	"वृत्तियों"
१०२	१६	हठ कर	हट कर
१०३	६	धंए से	धुएं से
१०८	८	कमों	कर्मों
११५	२३	खा बैठे हैं	खो बैठे हैं
११९	८	शस्त्रों	शास्त्रों
१४५	४	लेने के एक	लेने के लिए एक
१५४	१६	प्रत्यक्ष करना	प्रत्यक्ष अनुभव करना
१५९	६	कहता तुझे	कहता है तुझे

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूज्यपाद श्री मुनी जी महाराज हरमिलापी, श्री हरमिलाप भवन, हरिद्वार (यू० पी) की ओर से

शुभ कामना

ॐ ता० ११-६-५९

परम प्रेमास्पद श्री प्रभु दत्त ग्रोवर जी के साथ इस शरीर का बाल्यावस्था से सम्पर्क है। आप अपने विद्या अध्यन के समय अध्यापक रहे हैं। आप का जीवन सदाचारी है, जिस का प्रतिफल यह "वेदान्त प्रवेशिका" पुस्तक जनता के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। समय के अभाव से पुस्तक का कुछ अश निरीक्षण किया है। अध्यात्मवाद के जिज्ञासुओं के लिए यह ग्रन्थ विशेष रूप से उपयोगी है, कारण, वर्तमान के साधकों को समझने में सुविधा रहेगी। आप की बुद्धि तथा अनुभव का विकास है।

"आराम" का जिज्ञासु जीव अन्त में "विश्राम" चाहता है। विश्राम का पथ-प्रदर्शन इस ग्रन्थ में कराया गया है। इस शरीर की सद् भावना तथा शुभ कामना सदा से हृदय से इन के साथ है। मुझे पूर्ण विश्वास है, कि यह पुस्तक साधकों को विशेष लाभदायक होगी, क्योंकि, यद्यपि विषय बहुत कठिन है, तथापि श्री ग्रोवर जी ने इसे सरलता से निरूपण किया है, जिस से सर्व साधारण इसे अच्छी प्रकार समझ सकेंगे ॥

(हस्ताक्षर) मुनि हरमिलापी

Funding by IKS MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"We are Struggling towards individuality, and that is the Infinite; that is the real nature of man,"

(Swami Vivekananda.)

* * *

"We know the Divine and become the Divine, because we are already "That" in our Secret nature."

(Shri Aurobindo)

* * *

"प्रकाश का तात्पर्य है, सत्य का इतना अधिक अनुभव, कि सब दृश्यमात्र, देह, और रूप शून्यता में परिणित हो जाएं ।।"

(स्वामी रामतीर्थ)

* * *

"सृष्टि एक अन्योक्ति है— देखने में सृष्टि, वास्तव में भगवान"।।

(श्री विनोबा भावे)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रद्धेय श्री **भक्त राम लाल जी** वासुदेव, सत्संग भवन, नूर बिल्डिंग, सब्ज़ी मंडी देहली, की ओर से

सद् भावना

ओं नमो अन्तर्यामिने

"तद् ब्रह्मैवाहमस्मीत्यानुभवोदितो यस्यकस्यापि चेद्वै ।
पुंसां श्री सत्गुरुणामतुलित करुणा ऊर्णं पीयूष दृष्टयः ।।
जीवन मुक्त स एव भ्रमविधुर्मनः निर्गतेनाद्युपाधौ ।
नित्यानन्दैक धाम प्रविशति परमं नष्टसंदेह वृत्ति ।।

या संसार में मोक्ष से उत्कृष्ट सर्व वान्छनीय पदार्थ है नहीं । सर्व सिद्धान्त निर्णीत मोक्ष ही सर्व प्रकारेण प्राप्तीय है । स्वर्ग, ब्रह्मलोक आदिकों की प्राप्ति का नाम मोक्ष नहीं, कारण, "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति," तथा "आब्रह्म भुवानाल्लोकाः पुनावर्तिनो ऽजुर्न" । इन भागवत उक्तियों के अनुसार ते आगमापायी लोकों की स्पृहा सर्वथा त्याज्य है। अतः तत्त्वं-पदार्थं-शोधन-पूर्वक ऐहिक-पारलौकिक-भोग्य-त्याग, वैराग्य स्वरूप, बुद्धि द्वारा "अहं ब्रह्मास्मि" शुद्ध प्रमा ही त्रिविध-देह-अहंता-त्याग रूप विशुद्ध ज्ञानमय स्थिति ही मोक्ष का स्वरूप है। मिथ्या परिछिन्न-अहंकार का ममत्व बन्ध है। अन्यथा अविद्या-माया-उपाधि विनिर्मुक्त शुद्ध चिद्घन ही जीव का स्व स्वरूप है। श्री भगवान भाश्यकार लिखते हैं :-

"वेदान्त सिद्धान्त निरुक्तिरेषा, ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च ।
अखंड रूप स्थितिरेव मोक्षो, ब्रह्मद्वितीये श्रुते प्रमाणम्"।।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इत्यादिक पूज्य पूर्व आचार्यों के ग्रन्थों ("ब्रह्मसूत्र भाष्य," "विवेक चूड़ामणि," "अपरोक्षानुभूति" तथा सर्वज्ञात्म महामुनि कृत "संक्षेप शारीरिक," श्री मधुसूदन स्वामी द्वारा "अद्वैत सिद्धि" आदि) में सो जीव ब्रह्म का एकत्व भली प्रकार दर्शाया है। ताके पठन में जा की बुद्धि समर्थ है नहीं, और तत्त्वज्ञान पूर्वक मोक्ष की उत्कट जिज्ञासा है जिनको, अथवा "पंचदशी" तथा "विचार सागर" भी, कठिन प्रक्रिया होने से, क्लिष्ट पढ़े हैं, तापर अनुग्रह करते हुए हमारे परम मित्र श्री प्रभुदत्त जी ग्रोवर ने उन सर्व ग्रन्थों का सार रूप आधुनिक शैली में "वेदान्त प्रवेशिका" नामक अति रोचक ग्रन्थ निर्माण किया है, जो मैं ने आद्योपान्त देखा है। प्रक्रिया अति सुन्दर होने से जिज्ञासु जनों को अति हितकर है। इसका भली प्रकार श्रवण, पठन पाठन, मनन, निदिध्यासन करने पर :-

"सर्वाधारं, सर्व वस्तु प्रकाशं, सर्वाकारं, सर्वगं, सर्व शून्यं। नित्यं शुद्धं, निश्चलं, निर्विकल्पकं, ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि", यह स्थिति गुरु कृपा द्वारा सहजे ही हो सकती है, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

अतः महानुभावों से निवेदन है, कि इसका भली प्रकार पठन करके ग्रन्थ-कर्त्ता का निःस्वार्थ परिश्रम सफल करें।

ता० ७-१२-५९ (हस्ताक्षर) राम लाल वासुदेव

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमिका

है तो यह लेखक का मनन उन पाठों और विचारों का, जो उसने गुरु-चरणों में बैठ कर, पढ़े और सुने। इस मनन को पुस्तक के रुप में लिखने पर भी इस का छपवाने का कोई विचार नहीं था। परन्तु परम पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज, पूज्यपाद श्री मुनि जी महाराज हरमिलापी, तथा श्रद्धेय श्री भक्त राम लाल जी महाराज वासुदेव ने इसको जनता के लिये अतीव उपयोगी समझ कर इस को न केवल छपवाने की आज्ञा की, बल्कि तीनों गुरुजनों ने अपने आशीर्वाद भी प्रदान किये हैं, जिनके लिए उनका कोटिशः धन्यवाद है। इसके प्रकाशन में श्री श्याम जी ऐलावादी ने हर प्रकार का बोझ अपने सिर पर लिया, जिस के लिये उनका अतुल धन्यवाद है।

गुरुजनों की आज्ञा को शिरोधार्य कर के वह पाठ जनता जनार्धन रुप गुरु को सुनाने के लिए, एक अबोध बालक के समान, यह धृष्टता की है, जिस के लिये विद्वान महापुरुषों से लेखक क्षमा का प्रार्थी है। यदि ब्रह्मनिष्ट सद् गुरु के चरणों में उपसन्न होने से पूर्व किसी जिज्ञासु को इस से किंचिन्मात्र भी लाभ प्राप्त हो सके, तो बड़ी कृतकृत्यता होगी।

हम में से कई महानुभावों को "वेदान्त" के नाम से कुछ चिढ़ सी है। उन की यह चिढ़ किसी हद तक ठीक भी है, क्योंकि वेदान्त के नाम पर कई अनाचारी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और दुराचारी पाखण्डियों ने बड़े बड़े अत्याचार किए हैं, जिस से इन अत्याचारियों के प्रति घृणा के साथ साथ वेदान्त जैसे अपूर्व और पवित्र ईश्वरीय ज्ञान से भी घृणा और चिढ़ का हो जाना स्वाभाविक ही है। परन्तु शरीर के एक अंग के रोगी होने पर अवल तो उस अंग के रोग की निवृत्ति का उपाय करना चाहिए। परन्तु यदि रोग असाध्य है, तो भी उस रोगी अंग को शरीर से काट कर अलग कर देना तो ठीक है, उसके लिए सारे शरीर को ही समाप्त कर देना बड़ी भूल है। यदि इन अत्याचारियों का सुधार नहीं भी हो सकता, तो उनके कारण हम मनुष्य-जन्म के चरम और परम ध्येय की प्राप्ति से अपने आप को वंचित करदें, तो न केवल यह उस से ज़्यादा अत्याचार है, बल्कि आत्मघात है।

संसार को रच कर उसको उपयोग में लाने के लिए मनुष्यों को उसका ज्ञान देना भी आवश्यक था। इस लिए परम कृपालु ईश्वर ने जीवों पर अनुग्रह करके सृष्टि के आदि में ही वेदों का ज्ञान दिया। वेद के तीन कांडों (कर्म, उपासना, ज्ञान) में से ज्ञान (ब्रह्म ज्ञान, आत्म ज्ञान) अन्तिम कांड है। इस लिए इस कांड का नाम वेद+अन्त= वेदान्त है। निश्काम कर्म से मन की शुद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्वर्ग में इस मर्त्यलोक की अपेक्षा भोग दिब्य तो अवश्य होते हैं, परन्तु "पुण्यों के क्षीण हो जाने पर मनुष्यों को फिर मर्त्यलोक में वापस" आकर जन्म मरण के चक्कर में

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घूमना पड़ता है। उपासना (भक्ति) से मन की एकाग्रता का लाभ होता है, जिस से "विक्षेप" की निवृत्ति हो कर ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु मनुष्य-जन्म का अन्तिम ध्येय सदा सर्वदा के लिए परम आनन्द की प्राप्ति हैं। यह मोक्ष अपने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान अर्थात आत्म-ज्ञान=ब्रह्म ज्ञान=वेदान्त ज्ञान=परा भक्ति से ही सम्भव है "इसके सिवाए और कोई रास्ता नहीं है"। इस लिए मोक्ष के इच्छुक जिज्ञासुओं को कर्म और उपासना से आगे कदम बढ़ा कर वेदान्त ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष के लिए अग्रसर होना चाहिए। इस ज्ञान की प्राप्ति में प्रतिबन्धक "मल" और "विक्षेप" की निवृत्ति चाहने वाले साधकों के लिए लेखक ने **"प्रतिबन्ध निर्वेशिका"** नाम की एक अलग पुस्तक में **Theoretical** और **practical** साधनों का निरूपण कर दिया है।

युक्ति प्रधान साइन्स के इस युग में आज के नवयुवक को युक्ति तो **appeal** कर सकती हैं, शास्त्रीय प्रमाणों में उसे कोई रुचि नहीं। इसी लिए इस पुस्तक में, विशेष आवश्यकता के बिना, प्रमाणों को उद्धरित करने से जान बूझ कर एहतराज़ किया गया है। केवल युक्तियों पर निर्धारित मनन ही किया गया है, और उदाहरण प्रायः **every day life** की घटनाओं के लिए गए हैं। जिन महानुभावों को इस विषय के प्रमाणों में रुचि हो, वह लेखक-रचित **"आत्मैक्य संग्रह"** नाम की पुस्तक से दसों मुख्य उपनिषदों, गीता, गौड़पादीय कारिका, तथा पंचदशी इत्यादि से संग्रहीत मन्त्रों तथा श्लोकों के प्रमाण प्राप्त

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर सकते हैं।

पुस्तक में प्राय: "मैं" का शब्द प्रयोग किया गया है। यह शब्द केवल लेखक के लिये नहीं। यदि साधक महानुभाव इसका प्रयोग अपने लिए करेंगे, तो वास्तविकता दृढ़ांकित होने की आशा हो सकती है।

यह सब कुछ लिखा अवश्य इन हाथों से गया है, परन्तु इन हाथों को पकड़ कर लिखाने वाली शक्ति कोई और है, जिस पवित्र शक्ति ने २१ जनवरी १९५४ के पवित्र दिन ट्रेन के नीचे आए हुए इस शरीर को मृत्यु के खुले हुए मुख से बलात्कार छीन कर **अपनी रक्षा की पवित्र गोदी** में ले लिया। मैं तो स्थूल शरीर से लेकर अहंकार तक जढ़ बुद्धि ही हूं। इसमें जो भूले हैं, वह सब मेरी हैं। यदि विद्वज्जन उन भूलों को लेखक के नोटिस में लाने की कृपा करें, तो उनकी अतिशय अनुग्रह होगी ॥

लेखक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेदान्त प्रवेशिका

विषय सूचि

सं०	विषय	पृष्ठ
	शुभ आशीर्वाद श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की ओर से	(iii)
	शुद्धि पत्र	(iv)
	शुभ कामना श्री मुनि जी महाराज हरमिलापी " "	(v)
	सद् भावना श्री भक्त राम लाल जी वासुदेव " "	(vii)
	भूमिका	(ix)
	विषय सूची	(xiii)

पहिला भाग (आत्मा, परमात्मा)

सं०	विषय	पृष्ठ
१	वेदान्त परिचय बतौर अध्यात्मक साइन्स।	३
२	"अहं ब्रह्मास्मि" कहना ग़लत है।	५
३	नास्तिक कोई है ही नहीं।	७
४	एकत्व में शान्ति, नानात्व में झगड़ा और दुःख।	९
५	अच्छाई बुराई के ज़िम्मादार युग नहीं, हमारे कृत्य हैं।	१४
६	स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर, आत्मा, जीव के लक्षण।	१७
७	सुख दुःख अन्तः करण के धर्म हैं, आत्मा के नहीं।	२२
८	अंशी से अंश भिन्न नहीं।	२४
९	उपाधि भेद कोई भेद नहीं।	२६
१०	उपाधि का लय।	२८
११	सुषुप्ति अवस्था, आनन्द का अनुभव।	२९
१२	परा भक्ति ही वेदान्त है।	३३
१३	सच्चिदानन्द से भिन्न मेरी कोई सत्ता नहीं।	३५

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१४ आत्म-ज्ञान रूप सम्पत्ति का गुप्त रखना अनिवार्य । ३७
१५ निराकार, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द के अर्थ । ४१
१६ ब्रह्म से भिन्नता का कारण क्षुद्र अहंकार । ४७
१७ समाधि वाली स्थिति चौबीसों घन्टे । ५१
१८ एकत्व प्राप्ति के लिए शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार के स्तर से ऊपर उठना । ५६
१९ अहंकार ही सब दुःखों का कारण । ५७
२० आत्मैक्य दृष्टि । ६२
२१ सम दर्शता ६६
२२ अविद्या, काम, कर्म । ६८

दूसरा भाग (प्रकृति, माया, संसार)

सं० विषय पृष्ठ
२३ पानी और बरफ़ के दृष्टान्त से संसार पर विचार । ७४
२४ सत्ताएं—व्यवहारिक, प्रातिभासिक, पार्मर्थिक । ७९
२५ 'असत्य' (मिथ्या) के अर्थ ८०
२६ प्रमाण, प्रमेय । ईश सृष्टि, जीव सृष्टि ८४
२७ गौ के एक चित्र के दृष्टान्त से ज्ञान हो जाने पर परमात्म तत्त्व का हर समय में भान । ९१
२८ संसार छोड़ कर जंगलों में जाने का प्रायः कारण । ९२
२९ संसार के चलाने वाले हम नहीं । ९४
३० शास्त्रों का सिद्धान्तों में कोई आपसी मत-भेद नहीं । ९७
३१ आतशी-शीशे के दृष्टान्त से सृष्टि-रचना पर विचार । १०२
३२ निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग । १११

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तीसरा भाग

साधन Practical Aspect

सं०	विषय	पृष्ठ
३३	साधन के उपयोगी करण–अभ्यास, वैराग्य, श्रद्धा।	११४
३४	आत्म साक्षात्कार के लिए युक्तियां:–	
	पहिली युक्ति—आत्म परीक्षण।	१२०
	दूसरी युक्ति—पंचकोश विवेक "(नेति, नेति")।	१२३
	तीसरी युक्ति—स्वरुप-स्मृति की महारनी।	१४१
	चौथी युक्ति—आत्म निरीक्षण	१४४
	पांचवीं युक्ति—आत्म साक्षात्कार	१४६
	छटी युक्ति—स्व स्वरूप का बाह्य अनुभव।	१५०
३५	उपसंहार, आत्मैक्य ही शान्ति का एकमात्र उपाय।	१५७
३६	सर्वत्र आत्मैक्य दर्शन(श्री सूर्यनारायण मेहर की कविता)।	१५९
३७	नदी के बहाओ का गिल्ला बादल से (कविता)	१६०

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"अयं आत्मा ब्रह्म ।"
(माण्डूक्य-२)

पहिला भाग

आत्मा और परमात्मा

ज्ञान (i)

(Theoretical aspect)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ॐ

नमस्तस्मै सदेकस्मै कस्मैचिन्महसे नमः ।
यदेतद्विश्वरूपेण राजते गुरुराज ते ॥

महास्वप्ने माया कृत जनि, जरा, मृत्यु गहने भ्रमन्तं
क्लिश्यन्तं बहुलतर तापै रनुदिनम । अहंकार-व्याघ्र
व्यथितमिममत्यन्त कृपया प्रबोध्य प्रस्वापात्,
परमवितवान्मामसि गुरो ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेदान्त प्रवेशिका

प्रश्न १

यह वेदान्त है क्या चीज ?

उत्तर :-

वेदान्त आध्यात्म विज्ञान (Science) है । जिस प्रकार भौतिक विज्ञान में प्रयोग-शाला (Laboratory) में प्रयोग (Experiments) द्वारा स्थूल भौतिक पदार्थों का विश्लेशण (analysis) कर के उस से अद्भुत तत्त्व तक पहूंचा जाता है, उसी प्रकार इस आध्यात्मक विज्ञान में सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा सूक्ष्म तत्त्वों का विश्लेष्ण कर के सूक्ष्म से सूक्ष्म उस अद्भुत परम तत्त्व तक पहूंचा जाता है, जो इन महाभूतों का कारण और सब कारणों का आदि कारण है ।। शब्द " वेदान्त " दो शब्दों की सन्धि से बना है :- वेद + अन्त । 'वेद' का अर्थ है 'ज्ञान' और 'अन्त' का अभिप्राय है 'अन्तिम' । 'वेदान्त' का अर्थ है "अन्तिम ज्ञान" अर्थात जिस ज्ञान को प्राप्त कर के फिर और किसी ज्ञान की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती । इस ज्ञान की प्राप्ति पर सब कुच्छ जाना जाता है । परमात्मा ज्ञान स्वरूप है । ज्ञान ही परमात्मा है । यह हर समय, हर जगह, हर एक के अन्दर बाहिर मौजूद है । इस सर्वव्यापक अनन्त वेदान्त विज्ञान की कहीं बाहिर से उत्पत्ति नहीं होनी । बल्कि हृदय की गुफ़ा में यह निहित और छिपा हुआ खज़ाना पड़ा है उसका केवल

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रादुर्भाव ही होना है।

प्रश्न २

भले ही वेदान्त को विज्ञान कहा जाए, परन्तु इस वेदान्त ने तो भारत का बेड़ा ग़र्क कर दिया है। वेदान्ती कहते हैं "अहं ब्रह्मास्मि" अपने आप को ब्रह्म कह कर यह लोग इस आड़ में संसार में अत्याचार, अनाचार और दुराचार फैलाते हैं।

उत्तर :-

आप का यह कहना बिल्कुल यथार्थ है। इन अज्ञानी दुराचारी लोगों ने ऐसे अपूर्व विज्ञान को बदनाम कर के रख दिया है। "अहं ब्रह्मास्मि" भला किसी को कहने की चीज़ थोड़ी है! वह वाणी जिस से यह कहा जाता है, बल्कि शरीर, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार तक सब जड़ हैं। यह जड़ पदार्थ बोल थोड़ा सकते हैं। क्या किसी ने कभी पत्थर को बोलते सुना है?

और जब उस परम चेतन तत्त्व ब्रह्म का अनुभव होता है, तब भी तो "अहं ब्रह्मास्मि" कहते नहीं बन सकती। जैसे किसी का लोटा कुए में गिर जाय और वह उसको निकालने के लिए कुए में उतर कर और डुब्की लगा कर पांव से लोटा छू जाने पर जान तो लेता है कि "यह लोटा है" परन्तु पानी के अन्दर डूबा होने से वह बाहिर के किसी आदमी को यह कह नहीं सकता कि "लोटा मुझे मिल गया है" या "यह लोटा है"। वैसे ही उस ब्रह्म में निमग्न हुये हुये मनुष्य को "अहं ब्रह्मास्मि" कहते बन ही नहीं सकती। यह केवल दिखावा आडम्बर और मिथ्याचार है॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परन्तु दूसरी ओर यह कहना भी बड़ी भारी भूल है कि "वेदान्त ने भारत का बेड़ा ग़र्क कर दिया है"। यही वेदान्त ही तो वह वस्तु है, जो कि भारत संसार भर को दे कर सब देशों का सरमौर रहा है। यही विज्ञान जानने के लिए संसार भर के सब देश लालायत हैं। यही विज्ञान ही तो है, जिस ने विश्व भर में शान्ति की स्थापना करनी है। "कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्" में वेद ने इसी आर्य वैदिक सनातन सभ्यता को संसार भर को देने का आदेश किया है॥

प्रश्न ३

तो क्या "अहं ब्रह्मास्मि' कहना बिल्कुल ग़लत है ?

उत्तर :-

हां, अहं ब्रह्मास्मि "कहना" बिल्कुल ग़लत है। जैसे कोई आदमी जब तक राजा नहीं है, अपने आप को राजा कहना उसकी ग़लती है और यदि वह राजा बन जाए तो उसको लोगों को यह कहते नहीं बनती कि "मैं राजा हूँ" वह राजा के कार्य तो करेगा प्रन्तु "मैं राजा हूँ" ऐसा लोगों को कहता नहीं फिरेगा। इसी प्रकार ब्रह्म के अनुभव करने से पहिले "अहं ब्रह्मास्मि" कहना बिल्कुल ग़लत है और ब्रह्म के अनुभव हो जाने पर उसको ऐसा कहते नहीं बनती, यद्यपि वह ब्रह्म ही होता है, जैसे कि उपनिषद् में बतलाया गया है कि "ब्रह्म वित् ब्रह्मैव भवति"

प्रश्न ४

जीव अल्पज्ञ, एक देशी, सुख दुख का भोक्ता है। ब्रह्म

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वज्ञ, सर्व व्यापक है अकर्ता, अभोक्ता है। दोनों एक दूसरे से सर्वथा विपरीत धर्मों वाले हैं। वह जीव ब्रह्म कैसे हो सकता ?

उत्तर

बस इसी Problem ही को तो वेदान्त Solve करता है। जिस प्रकार भौतिक Science की अपनी technicalities और formulas होते हैं। वैसे ही इस आध्यात्मक विज्ञान की भी प्रकिया है और इसको समझने का अधिकारी बनने के लिऐ कुछ qualifications और गुणों का होना आवश्यक है। Unqualified मनुष्य जैसे भौतिक Science में Atom आदि का ज्ञान और उस के प्रयोग को नहीं समझ सकता, वैसे ही इस आध्यात्मक विज्ञान में भी प्रकिया की सीढ़ी पर चढ़े बिना इस परम गुप्त रहस्य का खुलना असम्भव है ॥

प्रश्न ५

हर एक मत अपने को सच्चा और दूसरे मतों को झूठा बतलाता है। हिन्दुओं के इस वेदान्त मत को भारत के सिख, मुसलमान, ईसाई भी नहीं मानते, दूसरे देश वालों की तो बात ही क्या है।

उत्तर

वेदान्त कोई सम्प्रदाय या मत नहीं है। नही यह विज्ञान केवल हिन्दुओं या भारत के लिऐ है। यह तो भौतिक विज्ञान की तरह संसार भर के मनुष्य मात्र के लिऐ है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान में पानी का analysis, (विश्लेषण) कर के ओक्सीजन (oxygen) और हाईड्रोजन (hydrogen) को अलग अलग कर दिया जाता

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है । और यह विश्लेषण कोई भी मनुष्य कर सकता है चाहे वह हिन्दु हो, मुसलमान हो, सिख हो, या ईसाई हो, चाहे भारती हो, अंग्रेज़ हो, अमैरिकन हो, रूसी हो, चीनी हो या जापानी हो। शर्त इस में भी केवल एक ही है, कि वह इस सत् असत् के विश्लेषण के विज्ञान को समझने के लिऐ qualified (अधिकारी) हो ॥

प्रश्न ६

संसार में प्रायः मनुष्य नास्तिक हैं, इस लिऐ यह कहना कि "यही विज्ञान (वेदान्त) जानने के लिऐ संसार भर के सब देश लालायत हैं" (देखो उत्तर २) अपने दिल को खुश करना मात्र ही है। इस में कोई सच्चाई नहीं ॥

उत्तर

ज़रा हृदय को विशाल कर के देखा जाए तो संसार में कोई नास्तिक है ही नहीं ॥ कोई मनुष्य बीमार होना नहीं चाहता, फिर भी बीमार हो जाता है, और दवाई खाने के बावजूद भी कई कई दिनों तक, बल्कि कई कई महीनों तक कष्ट भोगता है। एक पुत्र - हीन पुरुष (या स्त्री) को हज़ारों इलाज करने और लाखों प्रयत्न करने के बावजूद भी पुत्र की प्राप्ति नहीं होती । तो कौन "नास्तिक" से "नास्तिक" मनुष्य ऐसा होगा कि जो अपने से ज़्यादा प्रबल किसी शक्ति को मानने के लिऐ बाध्य नहीं होगा, जिस शक्ति ने उस की इच्छा न होने पर भी उसको बीमार होने पर मजबूर कर दिया और जो केवल इच्छा होने नहीं, बल्कि भरसक प्रयत्न करने के बावजूद भी उस को पुत्र प्राप्ति में रूकावट

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बनी । भले ही वह मेरे रखे हुऐ उस शक्ति के नाम को 'परमात्मा' न माने वह उसका नाम 'किस्मत' रखे 'प्रारब्ध' रखे या 'चांस' (chance) ही कह दे, तो इस से क्या फर्क पड़ा ?

एक वस्तु को मैं 'पानी' कहता हूं, दूसरा उसको पानी न मान कर 'जल' कहता है, कोई और उस को 'आब' कहता है, और अभी कोई और उसको 'water' 'वाटर' कहता है। तो मेरे 'पानी' को न मानने से बाकी के तीन मनुष्य गर्दन जदनी थोड़े हो जाते हैं । वह तीन भी उसी वस्तु को पी कर अपनी प्यास वैसे ही बुझाया करते हैं जिस को मैं 'पानी' कहने वाला पी कर बुझाया करता हूं। इस लिऐ किसी को 'नास्तिक' या 'काफ़िर' कहने का मेरा कोई हक नहीं । संसार का हर एक व्यक्ति उस को पूर्ण रूप से मानता है। नाम पर आग्रह करना मेरी भूल है ।

रहा प्रश्न यह कि इस विज्ञान को जानन के लिऐ संसार भर के सब देश लालायत हैं या नहीं । कौन नहीं जानता कि आज संसार के हर एक देश, हर एक जाति, हर एक समाज, हर एक घर, बलिक हर एक व्यक्ति का मन अशान्त है ? सुख तो सब चाहते हैं, परन्तु शान्ति के बिना सुख सम्भव नहीं और शान्ति उपनिषद्-ज्ञान (वेदान्त) के बिना सम्भव नहीं, इस लिऐ इस में कोई संदेह नहीं कि इस विज्ञान को जानने के लिऐ सब देश लालायत हैं ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रश्न ७

फिर वही "अपने मुंह मियां मिट्ठू" वाली बात है। जिस तरह आप अपने धर्म ग्रन्थों और अपनी विचार-धारा को सब से उच्च बतला कर कहते हैं कि इस के बिना संसार में शान्ति सम्भव नहीं हैं, इसी तरह दूसरे जातियां और मत अपनी अपनी विचार धारा को उच्च बतला कर कह सकते हैं, और कहते हैं, कि हमारी विचार धारा और सभ्यता के बिना संसार में शान्ति असम्भव है। इस लिए इस का तो निर्णय कभी होगा ही नहीं। और सब देश और जातियां अपनी अपनी विचार धारा के अनुसार संसार में शान्ति स्थापन करने का प्रयत्न कर रही हैं॥

उत्तर

बेशक आप का कहना बिल्कुल ठीक है कि हर कोई अपनी २ विचार धारा को उच्च कहता है और यह भी ठीक है कि उस के अनुसार वह शान्ति स्थापन करने का प्रयत्न भी कर रहे हैं, परन्तु एक भेद है, जिस भेद के समझ लेने पर यह भेद खुल जाएगा कि इस ज्ञान के बिना शान्ति असम्भव है। झगड़ा एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ हो सकता है, एक परिवार का दूसरे परिवार के साथ हो सकता है, एक मत का दूसरे मत के साथ हो सकता है, एक जाति का दूसरी जाति के साथ हो सकता है, या एक देश का दूसरे देश के साथ हो सकता है। फ़र्ज़ करो संसार में एक ही व्यक्ति है दूसरा कोई है ही नहीं, तो वह व्यक्ति किस से झगड़ा करेगा?

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपने आप से किसी को **राग** नहीं हो सकता, **अपने आप** से किसी को **द्वेष** नहीं हो सकता, **अपने आप** पर कोई क्रोध नहीं करता ॥ फ़र्ज़ करो संसार भर में **एक ही परिवार** है दूसरा कोई है ही नहीं, तो वह परिवार (बतौर परिवार के) किस से झगड़ा करेगा ? फ़र्ज़ करो संसार भर में **एक ही मत** हैं, **दुसरा** कोई है नहीं, तो वह मत (बतौर मत के) किस से झगड़ा करेगा ? फ़र्ज़ करो संसार में **एक ही जाति** है दूसरी कोई है नहीं, तो वह जाति (बतौर जाति के) किस से झगड़ा करेगी ? और फ़र्ज़ करो संसार भर में **एक ही देश** है, **दूसरा** कोई है ही नहीं, तो वह देश (बतौर देश के) किस से झगड़ा करेगा ?

तो गोया उपरोक्त कथन से हमें एक formula. (सिद्धान्त) मिल गया कि झगड़ा (राग, द्वेष, क्रोध इत्यादि) तभी होता है जहां **दूसरा** हो, **जहां एक हो वहां कोई झगड़ा नहीं, वहां शान्ति है** । बस, यही formula, वेदान्त की बुनियाद है । वेदान्त की परिभाषा (technique) में इस को "**अद्वैत**" कहते हैं । इसी लिए वेदान्त को अद्वैत वाद कहा जाता है ।

प्रश्न ८

यह सम्भव ही नहीं कि सभी देश मिट कर एक देश हो जाए, या सभी जातियाँ एक जाति हो जाएं,

Funding by KSMOE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

या सभी मत मिट कर एक ही मत हो जाए, या सभी परिवारों का एक ही परिवार हो जाए, या सब व्यक्ति नाश हो जाएं, और एक ही व्यक्ति शेष रह जाए। जब "अद्वैतवाद" का formula केवल formula ही है, तो शान्ति की स्थापना का दावा करना व्यर्थ ही है

उत्तर

वेदान्त यह तो नहीं चाहता कि संसार में केवल एक देश, या एक ही जाति, या एक हीं मत, या एक ही परिवार, या एक ही व्यक्ति रहे, यह तो उलटा झगड़े की बुनियाद पड़ गई। क्योंकि तब तो हर एक देश, जाति, मत, परिवार, और व्यक्ति दूसरे को नाश कर के स्वयं शेष रहने का यत्न करेगा। और यही बात तो अब हो रही है, जिस से हर तरफ़ अशान्ति फैली हुई है। इसके ठीक विपरीत वेदान्त यह चाहता है कि सब देश, सब जातियां, सब मत, सब परिवार, और सब व्यक्ति अपनी २ जगह पर फलें फूलें। वह तो इन सब में एक Common factor को आगे लाना चाहता है, जो इन सब की बुनियाद हैं। वह तो इस सारे "द्वैत" को एक "अद्वैत" तत्त्व के आधार पर रखना चाहता हैं, जो सब में इस तरह अनुस्यूत है, जैसे माला के फूलों में तागा। फूल भिन्न २ भले ही हों, कोई गुलाब का, कोई गैन्दा, कोई चम्बेलि, कोई पीला, कोई नीला, कोई सफेद, कोई काला, कोई छोटा या बड़ा। परन्तु इस सारी भिन्नता के बावजूद एक अभिन्न तत्त्व (तागा) उन सब की एकता का आधार है। पिरोई

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाने पर माला, माला ही कहलायेगी और उस में सुगन्धि रहित फूल को भी वही स्थान मिलता है (पहनने वाले के गले की शोभा का स्थान, वह गला राजा का भी हो सकता है, देवता का भी हो सकता है) जो सुगन्धित फूल को, काले को भी वही स्थान मिलता है, जो सफ़ेद को, और छोटे को भी वही स्थान मिलता है, जो बड़े को । माला के तागे के कारण फूलों के रंग, रूप, गुण, अवगुण, छोटाई, बड़ाई के सब भेद भाव मिट जाते हैं ।

ठीक इसी प्रकार से जब सब देश, सब जातियां, सब मत, सब परिवार और सब व्यक्ति एक ही आत्म तत्त्व रूप तागे में पिरोए जाएंगे तो उन में के व्यक्तिगत रंग, रूप, गुण अवगुण, छोटाई, बड़ाई के सब भेद भाव मिट कर "समत्व" भाव आ जाएगा ।। "आत्मा" का अर्थ है "अपना आप" । जब सब देशों के, सब जातियों के, सब मतों के, सब परिवारों के सब व्यक्ति सबको **आपना आप** (आत्मा) समझ लेंगे (जैसा कि वास्तविक तौर पर हम हैं) तो अपने आप के सिवा दूसरा कोई नहीं रह जाएगा और (जैसा कि पहले विचार हो चुका है) जहां दूसरा कोई नहीं रहा, वहां झगड़ा हो नहीं सकता, वहां शान्ति स्वयमेव ही स्थापन हो गई ।।

प्रश्न ९

ऐसी असम्भव बात न आज तक हुई है, न हो सकती है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर

यह बात असम्भव नहीं, कठिन अवश्य है। किसी भी कठिन काम को कठिन समझ कर छोड़ नहीं दिया जाता, बल्कि उस के लिये और अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता होती है। कठिन काम तब तक जरूर कठिन हैं जब तक पूरे परिश्रम से उसको आसान नहीं बना दिया जाता और फिर वही कठिन प्रतीत होने वाला काम आसान हो जाता है, और ज़रूर हो जाता है। यदि परिश्रम करने पर भी उस में कठिनता प्रतीत हो, तो उसके यह अर्थ कभी नहीं कि वह असम्भव है, बल्कि उसका अर्थ यह है कि उसमें अभी परिश्रम की कमी है। इस लिए और ज्यादा परिश्रम और पुरूषार्थ किया जाए, तो वही असम्भव और कठिन काम आसान हो जाता है।

यह बिल्कुल ठीक कहा गया है कि "The word 'impossible' lies in the dictionary of fools" ('असम्भव' का शब्द मूर्खों के कोश में ही पाया जाता है)। क्योंकि यदि एक काम को एक आदमी असम्भव समझता है, और दूसरा उसी काम को पूरा करके दिखा देता है, तो वह काम असम्भव कैसे हुआ ? यदि मै हवाई-जहाज बनाना असम्भव समझता हूं, परन्तु दूसरे लोग हवाइ-जहाज़ ही नहीं, राकैट बना कर हवा में उड़ रहे हैं, तो हवाई-जहाज का बनाना असम्भव तो न हुआ। बल्कि यदि मैं भी पूरी आवश्यक सामग्री को ले कर पूरे बुद्धि और बाहूबल के जास हवाई-जहाज बनाने में जुट

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाऊं, और तब तक इस में जुटा रहूं, जब तक इसको बना न लूं, तो मेरे लिए भी आरम्भ में असम्भव प्रतीत होने वाला हवाई-जहाज बनाने का काम, सम्भव हो सकता है। इस लिए यह कहना उचित नहीं है, कि यह असम्भव है।

और यह कहना भी सत्य नहीं है कि ऐसा कभी हुआ ही नहीं। श्री रामचन्द्र जी ने इसी आधार पर अपने राज्य को चला कर संसार भर के लिए एक आदर्श पेश किया हुआ है। "राम-राज्य" का अर्थ ही अब "शान्ति के राज्य" का पर्याय शब्द बन गया है, जिससे यह स्पष्ट अनुमान हो सकता है कि उनके राज्य में पूर्ण शान्ति थी॥

प्रश्न १०

वह सत्य युग था, अब कलियुग में एसी बातें कहां?

उत्तर

यह विचार भी समीचीन नहीं है। कलियुग में भी तो राजा अशोक ने इसी आधार पर अपने राज्य को चला कर संसार के लिए आदर्श पेश कर ही दिया है। क्या इतिहास साक्षी नहीं है, कि उसके राज्य में पूर्ण रूप से शान्ति थी? दुकानें खुली रहती थीं, उन को ताला तक नहीं लगाया जाता था। हर चीज की कीमत मुकरर थी। आवश्यकता पड़ने पर ग्राहक कोई भी चीज स्वयं दुकान से ले लेता था, जब कि दुकानदार दुकान पर नहीं होता था और चीज की पूरी कीमत वहीं रख देता

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था । कितना उच्च आचार था ! हर शख्स दूसरे को "अपना आप" समझता था, और दूसरे को धोका देना अपने आप को धोका देना समझता था ।

और न ही यह विचार ठीक है कि जो कुछ सत्ययुग में हो सकता था, वह अब कलियुग में नहीं हो सकता। भला युग का इससे क्या सम्बन्ध ? सत्ययुग में भी तो यही सूर्य, यही चन्द्र और यही पृथ्वी आदि थे, जो अब कलियुग में हैं । सत्ययुग में भी मनुष्यों के इसी प्रकार दो हाथ, दो पांव, दो आँखें और एक ही सिर था, जिस प्रकार अब कलियुग के पुरूषों के हैं । यदि सत्य युग को बतौर युग के अच्छा माना जाए, तो उस समय भी राक्षस प्रवृति के लोग मौजूद थे, जिनका श्री रामचन्द्र जी ने वध किया, और कलियुग को यदि, बतौर युग के, बुरा माना जाए, तो इस युग में भी दैवी प्रवृति के बड़े बड़े आचार्य हैं और हुए हैं ।

बात वास्तव में यह है कि हम ने अपनी कमज़ोरियों को छिपाने के लिए सारा दोष कलियुग पर ठोंस दिया है । आचार को ऊंचा बनाने के लिए और दैवी प्रवृति अपनाने के लिए कष्ट करना पड़ता है, अपने स्वार्थ को दूसरे के लिए थोड़ा सा त्यागना पड़ता है, वह न करके हम दोष युग के सिर मढ़ देते हैं । छत पर खड़ा हुआ आदमी गिरना चाहे तो उसे कोई यत्न करने की आवश्यकता नहीं हाथ बाँध कर भी धड़ाम से नीचे गिर सकता है, परन्तु नीचे से ऊपर छत पर चढ़ना हो, तो उसके लिए जीना बनाने और एक २ सीढ़ी पर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चढ़ने में प्रयत्न की आवश्यकता है । वह, प्रयत्न न करने की कमजोरी का दोष, अपने ऊपर से हटा कर और युग के सिर पर थोप कर, अपने आप को निर्दोष समझ कर, भले ही हम अपने आप को धोका दें, युग का इस से कोई भी सम्बन्ध नहीं है ।

प्रश्न ११

दृष्टान्त में तो ठीक है कि माला में एक ही तागा है, जो भिन्न २ प्रकार के फूलों का 'एकत्व' कर देता है परन्तु आठवें प्रश्न के उत्तर में जो यह कहा गया है कि "जब सब व्यक्ति आत्म तत्त्व रूप तागे में पिरोए जाएंगे....." इस दार्ष्टान्तिक पर उसको घटाना समीचीन नहीं है, क्योंकि फूलों में तो तागा एक ही है, परन्तु व्यक्तियों में आत्मा एक ही थोड़ा है । हर एक में अलग अलग आत्मा है । यदि आत्मा एक ही होता, तो एक व्यक्ति को सुख होने से सब को सुख होता, और एक को दुःख होने से सब को दुःख होना चाहिये । परन्तु ऐसी बात नहीं है । एक घर में लड़के के विवाह की खुशी में खुशियां मनाई जा रही है हैं, परन्तु पड़ोस में ही अकलोते बेटे की युवावस्था में मृत्यु हो जाने पर छातियाँ पीटी जा रही हैं ॥

उत्तर

बहुत उमदा प्रश्न है । आपके प्रश्न से ही प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि आपका "श्रवण" बड़ी सावधानी और एकाग्रता से हो रहा है और कि आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र और सूक्ष्म है पहिले भी आप ने इसी विषय पर प्रश्न किया था (प्रश्न ४)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परन्तु जान बूझ कर उस समय उस का उत्तर स्थगित कर दिया गया था। तीन चार और प्रश्नों पर विचार हो जाने के बावजूद भी आठवें प्रश्न के उत्तर के आधार पर वैसा प्रश्न फिर किया गया है। अब इस पर विचार करना आवश्यक है। यद्यपि यह अतीव सूक्ष्म और गहन विषय है। परन्तु चूंकि इस विषय के हल करने में आप के मन में उत्तावल है, इस लिए पहिले से भी ज्यादा सावधानी और एकाग्रता से इस विषय को श्रवण करना होगा ॥

इस आध्यात्मक विज्ञान (वेदान्त–उपनिषद्) ने मनुष्य का विश्लेषण करके उसके निम्न लिखित भाग किए हैं। इस विज्ञान के अनुसार इन भागों के technical नाम और उनके function (काम) ज़रा सावधानी से याद कर लेने होंगे :-

१ "स्थूल शरीर" :- यह जो ऊपर का खोल और ढांचा है, जो चलता फिरता, खाता पीता और सोता जागता है। और मरने पर जिस को फूक दिया जाता है, या दफ़ना दिया जाता है।

२ "सूक्ष्म शरीर" :- इसके फिर भाग किये गए हैं।

(१) "प्राण" :- जो श्वास हम नाक से लेते या छोड़ते हैं।

(२) "ज्ञान इन्द्रियाँ" (पांच) आंख, कान, नाक, ज़बान, त्वचा (चमड़ा)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(३) "कर्म इन्द्रियां" (पांच) हाथ, पाँव, ज़बान, मल इन्द्रिय, मूत्र इन्द्रिय,

(४) "मन" :- वह सूक्ष्म (नज़र न आने वाली) इन्द्रिय जिस से हम सोच विचार करते हैं ।

(५) "बुद्धि" वह सूक्ष्म वृति जिस से हम निश्चय करते हैं ।

(६) "चित" वह सूक्ष्म वृति (ग्रामोफोन की प्लेट की तरह) जिस में हर प्रकार के संस्कार अंकित होते जाते हैं ।

(७) "अहंकार" :- वह सूक्ष्म वृति जो "मैं" एसा कह कर अपने को दूसरे व्यक्तियों से अलग करती है ।

३ "कारण शरीर :- इसका दूसरा नाम अविद्या है, जिस से मनुष्य जन्म मरण के चक्कर में पड़ता हैं ।

यहाँ तक अर्थात उपरोक्त तीनों शरीर (स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, और कारण शरीर) सब जड़ हैं, बेजान हैं, और अपने आप अपना २ काम नहीं कर सकते । उनको काम करने के समर्थ बनाने के लिए इन से बिल्कुल भिन्न एक "**चेतन शक्ति**" है जिस को **आत्मा** कहा जाता है ।

इन के अतिरिक्त दो technical नाम और भी याद कर लेने ज़रूरी हैं । उन में से एक है '**अन्तः करण**" । यह सूक्ष्म शरीर (देखें उपरोक्त नं० २) के आखरी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चार भाग (अर्थात मन, बुद्धि, चित और अहंकार) के समूह का नाम है, और दूसरा याद रखने के काबिल नाम है "जीव"। चूंकि यह सूक्ष्म और शरीर के अन्दर के भाग हैं इस लिए इन का समझ में आना थोड़ा कठिन है, इस लिए दो तीन उदाहरण लेकर इन पर विचार किया जाता है, जिससे इन के functions (क्रियाएं) स्पष्ट हो जाएगे :-

(१) रेल्वे ट्रेन के डब्बे अपनी जगह से एक इन्च भी नहीं हिल सकते (चाहे वह सौ साल भी खड़े रहें) जब तक इन्ज़न आकर इनको खैंच न ले जाए। यह डब्बे मानो मनुष्य के स्थूल शरीर की जगह पर हैं।

इन्जन का ढांचा भी अपनी जगह से एक इन्च नहीं हिल सकता (चाहे वह भी सौ साल तक खड़ा रहे) जब तक उसमें भाफ़ (Steam) की शक्ति नहीं भरी जाती।

ट्रेन में तीन चीज़े विशेष तौर पर जानने याग्य हैं (i) स्टीम (ii) इन्जन का ढाँचा (iii) स्टीम की शक्ति के भरे जाने के बाद इन्जन, जो ट्रेन के डब्बों और उन में के सैकड़ों आदमियों और सैकड़ों मन सामान को कशां २ खींच कर सैकड़ों मीलों तक ले जाने के स्मर्थ हो जाता है।

(२) दूसरा उदाहरण हम हार मोनियम का लेंगे :- हार मोनियम में से कभी स्वर नहीं निकल सकती (चाह

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह सौ साल भी पड़ा रहे) जब तक उसके अन्दर छोटी बड़ी भिन्न २ साइज़ की पत्रियां जुड़ी हुई न हों ।

इन पत्रियों में से भी कभी स्वर नहीं निकल सकता (चाहे वह सौ साल भी लगी रहें) जब तक धौंकनी से उनके अन्दर हवा की शक्ति नहीं भरी जाती ने।

हारमोनियम में भी तीन चीज़ें विशेष तौर परजान योग्य हैं (i) हवा की शक्ति (ii) पत्रियां जो भिन्न भिन्न साईज की हैं और (iii) पत्रियों और हवा की शक्ति का संयोग, जिस संयोग के होने पर ही स्वर निकलने लगती है ।

(३) तीसरा उदाहरण बिजली के बल्ब का ले लेते हैं :-
बल्ब कभी रोशनी नहीं दे सकता (चाहे वह सौ साल तक लटका रहे) जब तक उसके अन्दर negative और Positive तारें न लगी हुई हों।

यह तारें भी कभी रोशनी नहीं दे सकती (चाहे वह सौ साल तक उनमें लगी रहें) जब तक उनके अन्दर बिजली की शक्ति नहीं भरी जाती ।

बल्ब में भी तीन चींजे विशेष तौर पर जानने योग्य हैं :- (i) बिजली की शक्ति (ii) भिन्न २ साइज और रंगो के बल्बों के अन्दर की तारें और (iii) तारों और बिजली की शक्ति का संयोग, जिस संयोग के होने से ही बल्ब रोशनी देने में समर्थ हो सकता है ।।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ठीक इसी प्रकार मनुष्य शरीर भी चलने, फिरने, देखने, सुनने, सोचने विचारने' आदि का कोई काम भी नहीं कर सकता (चाहें वह सौ साल भी पड़ा रहे) जब तक उसके अन्दर अन्तः करण न हो ।

यह अन्तः करण भी कोई काम नहीं कर सकता (चाहे वह सौ साल तक भी पड़ा रहें) जब तक उस का सम्बन्ध **आत्मा** की चेतन **शक्ति** के साथ न हो जाए ।

मनुष्य शरीर में भी तीन चीजे विशेष तौर पर जानने योग्य हैं :- (i) आत्मा की चेतन शक्ति (ii) सुख, दुःख, पुण्य, पाप आदि सस्कारों वाले भिन्न २ अन्तः करण और (iii) अन्तः करण और आत्मा की चेतन शक्ति का संयोग (जिस को **जीव** कहते हैं,) जिस संयोग अर्थात जीव, के होने से ही मनुष्य, चलने, फिरने, देखने, सुनने, सोच विचार करने आदि का काम करने में समर्थ हो सकता है ॥

प्रश्न १२

वाकई, यह तो बड़ी कमाल की साईन्स है । इतना सूक्ष्म विश्लेषण मनुष्य शरीर का कर देना इसी साइन्स का ही काम है । विषय है तो बड़ा सूक्ष्म और गम्भीर, परन्तु इन तीन उदाहरणों से बहुत कुछ समझ में आ गया है । परन्तु प्रश्न तो वैसे का वैसा ही रहा । प्रश्न तो यह था कि आत्मा के सब में एक होने की

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूरत में एक मनुष्य के सुखी होने पर सब को सुखी और एक के दुखी होने पर सब को दुखी होना चाहिये। कोई सुखी है, कोई दुखी है, ऐसा क्यों ?

उत्तर

बड़ी प्रसन्नता की बात हैं कि दत्त चित्त हो कर श्रवण करने से इतने तक का विषय आप ने ग्रहण कर लिया है। आपका प्रफुल्लित चेहरा और आंखों में चमक आपके जबान से ऐसा प्रगट करने से पहिले ही इस बात की गवाही दे रहे थे।

यदि आप इतने तक समझे हुए विषय पर ज़रा मनन और विचार करें तो आप अपने प्रश्न का उत्तर अब आप स्वयं ही दे सकते हैं। तो भी सुभीता के लिए एक Experiment (प्रयोग) करते हैं जिस से इस शंका का समाधान बड़ी सुगमता और बड़ी ही स्पष्टता से हो जाए।

देखिए, एक बोर्ड पर दो (बिजली के) प्लग लगे हुए हैं और (switch) दोनों का एक ही है। अब एक प्लग का Connection तो कर देते है Refrigerator के साथ और दूसरे का एक Heater के साथ, जो बिल्कुल उसके नजदीक पड़ा हुआ है। Refrigerator में पानी भर दिया है और हीटर पर भी पानी से भरा हुआ बर्तन रख दिया है। स्विच को कर देते हैं 'on'। थोड़ी देर के बाद क्या देखते हैं कि 'रैफ्रिज्रेटर' में का पानी तो बड़ा ठन्डा हो गया है, उस में उंगली डालने से उंगली सुन्न हो जाती है,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परन्तु पास ही पड़े हुए हीटर वाले बर्तन का पानी खूब खौल रहा है। उसमें उंगली डालने से उंगली जलती है। कारण क्या है ? बिजली तो एक ही है, एक के ठन्डा होने से दोनों को ठन्डा या एक के गरम होने से दोनों को गरम होना चाहिए। एक ठन्डा है, दूसरा गरम, ऐसा क्यों ? कारण स्पष्ट है कि भेद रैफ्रीज्रेटर और हीटर की बनावट में है, जिस से एक में पानी ठन्डा और दूसरे में गरम हो जाता हैं। बिजली की शक्ति न तो ठंडी है, न गरम। वह तो समान रूप से दोनों को शक्ति दे रही है।

ठीक इसी तरह यदि "एक घर में लड़के के विवाह की खुशी में खुशियां मनाई जा रही हैं, परन्तु पड़ोस में ही अकलौते बेटे की युवावस्था में मृत्यु हो जाने पर छातियां पीटी जा रही हैं" (प्रश्न ११ देखें), तो इस का कारण यह नहीं कि आत्मा भिन्न २ हैं, बल्कि (उदाहरण में रैफ्रीज्रेटर और हीटर की तरह) अन्तः करणों की (उस समय की) बनावट में भेद है। जिस से एक अन्तः करण सुखी और दूसरा दुखी हो रहा है। आत्मा की चेतन शक्ति न तो सुखी है, न दुःखी। वह तो सच्चिदानन्द, अलिप्त और सब को समान रूप से सत्ता दे रही है॥

प्रश्न १३

'सच्चिदानन्द' तो परमात्मा का लक्षण है। वह अंशी है। आत्मा उसका अंश है, वह सच्चिदानन्द कैसे हो सकता है ? आत्मा और परमात्मा को एक मानना तो बड़ा कुफ़र है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर

अंश और अंशी में इतना भेद तो अवश्य माना जा सकता है कि अंश अपने अंशी से आकार में छोटा होता है, परन्तु अंश होने से उस के गुणों में तो भेद नहीं आ जाता। नमक के दो मन के ढेले से आधे तोले का एक टुकड़ा तोड़ लेने पर वह छोटा सा टुकड़ा (अंश) अपने दो मन के ढेले (अंशी) से आकार में छोटा है जरूर, परन्तु उसका एक २ कण भी वैसे ही नमकीन है, जैसे उसके अंशी दो मन नमक के ढेले का। अंश और अंशी नमक के गुण में किंचिन्मात्र भी फ़र्क़ नहीं आया।

मिश्री के सारे थाल (अंशी) और उसके एक टुकड़े (अंश) में आकार का भेद भले ही है, पर उस मिश्री के अंश के एक एक कण में मिठास वैसे ही है, जैसे उस के अंशी मिश्री के थाल के एक २ कण में ॥

प्रश्न १४

भेद तो है ही, गुणों में न सही, आकार में ही सही। एक तो नहीं हैं न।

उत्तर

भेद कैसे हुआ भला। आप ने स्वयं ही नमक के ढेले से ही तो नमक का टुकड़ा तोड़ा और मिश्री के थाल से मिश्री का टुकड़ा अलग किया। अलग होने के बाद यदि नमक का अंश (टुकड़ा) नमक न रहता, या मिश्री का अंश मिश्री न रहता और यह अंश अपने अपने अंशी से अलग

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होने पर कुछ और ही बन जाते, तब तो भेद माना भी जा सकता ।

लीजिए, यह सूक्ष्म विषय और ज्यादा स्पष्ट हो जाए, इस के लिए एक और उदाहरण ले लेते हैं :- मान लो हम समुद्र की यात्रा कर रहे हैं और हमारा जहाज़ समुद्र के ऐन मध्य में पहूंच गया है । अपने चारों ओर जहां भी नजर दौड़ाते हैं (समुद्र का) पानी ही पानी है । हम मिट्टी का एक ख़ाली घड़ा लेकर और उसे एक रस्सी से बांध कर समुद्र में लटका देते हैं । होता क्या है ! घड़ा समुद्र के पानी से भर जाता है । घड़े में आया हुआ पानी अंशी समुद्र का अंश है । यह अंश समुद्र से भिन्न नहीं है, क्योंकि समुद्र से ही तो पानी उस में आया हैं। अब घड़े के बाहर भी समुद्र है । अन्दर वाले समुद का नाम अंश है, बाहिर वाले मीलों तक फैले हुए समुद्र का नाम अंशी है ।

यह विचार तो हम ने किया घड़े के दृष्टि कोण से, अब ज़रा समुद्र के दृष्टि कोण से विचार कीजिये । मीलों तक फैला हुआ समुद्र है, जहां तक नजर काम कर सकती है, समुद्र ही समुद्र है, समुद्र से भिन्न कुछ भी नहीं हैं । समुद्र ही शान्त, अचल, प्रतिष्ठित और अपनी महिमा में स्थित हैं । परन्तु घड़े के ठीकर से इस में कुछ भेद सा प्रतीत हो रहा है, जिस से "घड़े के अंदर का पानी" और "घड़े के बाहिर का समुद्र" ऐसा भेद हम को प्रतीत होने लगता है, बल्कि घड़े में

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आए हुए पानी को हम समुद्र कहना ही पाप समझने लग जाते हैं, कि घड़े में का दस बीस सेर पानी भी कहीं समुद्र हो सकता है ! "चेनिस्बत ख़ाक रा ब आलिमे पाक ?"

ज़रा देखना, शान्त समुद्र में हमारे जहाज़ के पास से ही यह लहर सी कैसी उठ रही है ? ओहो, यह 'वेल (मछली) के गुज़रने से इतना तलातम है ! यह तो बड़ी ख़तर्नाक चीज़ है, एक टक्कर से बड़े बड़े जहाज़ों को तोड़ देती है, ऐसा सुना है । शुक्र है, हमारे जहाज़ से दूर हो कर निकल गई है ! परन्तु हमारा घड़ा ? उसको तो तोड़ गई ! ईं ? और उसमें का पानी ? वह ठीकर के टूटने पर कहां रह सकता भला, बह गया । कहां ? समुद्र में ही तो ! अच्छा, तो एक कृपा करो, आप तैराक हैं, इस में से वह पानी मुझे अलग करके निकाल दें, जो घड़े में था और जिस को हम अंश कह रहे थे । अजी, ऐसा करना सम्भव ही कैसे हो सकता है ! क्यों, क्या हो गया ? वह समुद्र में मिलकर समुद्र ही तो हो गया, अब किसी की सामर्थ्य कहां कि उसे अलग कर सके !

लो जी, आप ने अपनी ज़बान से ही अपने प्रश्न का उत्तर दे दिया है । अभी समझने में कठिनाई हो, तो आइए इस उदाहरण को दार्ष्टान्तक पर घटाएं :-

(पानी) समुद्र = परमात्मा, सच्चिदानन्द ।
(ठीकर) खाली घड़ा = अन्तः करण "उपाधि" ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घड़े में आया हुआ "पानी" = आत्मा।

पानी से भरा हुआ घड़ा = जीव।

जिस तरह, जहाँ तक नजर जाती है वहां तक समुद्र ही समुद्र है, इसी प्रकार दार्ष्टान्तक में हर जगह पर सच्चिदानन्द परमात्मा 'सर्व व्यापक' है।

जिस तरह घड़े में भी समुद्र का पानी भरा है, इसी तरह अन्तः करण में भी सच्चिदानन्द परमात्मा है, जिस को 'आत्मा' कहते हैं। जिस तरह घड़े में आया हुआ समुद्र (पानी) अंश है, और बाहिर फैला हुआ समुद्र अंशी है, इसी तरह अन्तः करण में आया हुआ "परमात्मा" अंश, और बाहिर सर्व व्यापक परमात्मा अंशी है।

जिस तरह घड़े के अन्दर भी पानी है और बाहिर भी पानी है, घड़े के ठीकर के कारण हीं इस में भेद सा प्रतीत हों रहा है, इसी तरह अन्तः करण के अन्दर भी सच्चिदानन्द है, बाहिर भी सच्चिदानन्द है, अन्तः करण की "उपाधि" के कारण ही इस में भेद सा प्रतीत होता है।

जिस तरह ठीकर के कारण ही अन्दर के पानी को अंश, और बाहर के समुद्र को अंशी कह देते हैं, इसी तरह अन्तः करण की उपाधि के कारण ही उसके अन्दर के सच्चिदानन्द परमात्मा को अंश (आत्मा),

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और बहिर के सच्चिदानन्द परमात्मा को अंशी कह दिया जाता है।

जिस तरह ठीकर के टूट जाने पर अन्दर का पानी बाहिर के समुद्र के साथ मिल कर एक हो जाता है, और मिल जाने के बाद फिर यह नहीं कहा जा सकता "यह अन्दर वाला पानी है" बल्कि अन्दर बाहिर का भेद मिट कर 'समुद्र' ही कहा जाता है। इसी प्रकार अन्तः करण उपाधि के टूट जाने पर ("लय" हो जाने पर) आत्मा, परमात्मा के साथ मिल कर एक हो जाता हैं, और मिल जाने के बाद फिर यह नहीं कहा जा सकता कि "यह आत्मा है"। यह भेद मिट कर "परमात्मा" ही कहा जाता है। बल्कि उस अवस्था में नाम रूप सब लय को प्राप्त हो जाते हैं। उस अवस्था में उस "परमानन्द" का केवल अनुभव ही अनुभव होता है। गूंगे के रस की तरह बताया नहीं जा सकता। कोई दूसरा हो तो बताए। बताने वाले (इन्द्रियां और अन्तः करण) रहे ही नहीं, बताए कौन!

प्रश्न १५

"अन्तः करण लय को प्राप्त हो जाता है"। "उस अवस्था में बताने वाले रहे ही नहीं, बताए कौन!" कुछ समझ न आई। वह अवस्था है कौनसी? ज़रा और विस्तार पूर्वक खोलिए।

उत्तर

यह वह अवस्था हैं जिस को वेदान्तों (उपनिषदों) में

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"परम गति" का नाम दिया गया है, जिसमें "इन्द्रियां और मन स्थिर हो जाते हैं और बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती"। यह अवस्था समाधि और जीवन मुक्ति में अनुभव की जा सकती है। परन्तु यह दोनों सर्व साधारण की पहूंच से परे हैं, इस लिए परमात्मा ने अपनी अपार और अतिशय करूणा से उस अवस्था का एक नमूना हमें प्राप्त करा दिया है, जिस से हम सब रोज़ाना उस का अनुभव करते हैं। और जिस के बिना जीव मात्र का जीवन अजीर्ण हो जाता है।

जागने और स्वप्न देखने के अतिरिक्त हम रोज़ाना एक तीसरी अवस्था का अनुभव करते हैं जिस को सुषुप्ति या गाढ़ निद्रा कहते हैं। यह एक विचित्र अवस्था है, जिस का विस्तार पूर्वक विचार तो इसी भाग के तीसरे खंड में किया जा सकेगा, (जब कि हम पंच कोश पर विचार करेंगे) इस समय केवल यही जानना पर्याप्त है कि इस सुषुप्ति अवस्था में (सच्चित) आनन्द का अनुभव होता है। और सवेरे नींद से जागने पर हम कहते हैं कि "नींद में बड़ा आनन्द आया. सारी थकावट दूर हो गई"। इस का कारण यह है कि सुषुप्ति अवस्था में (इन्द्रियां, मन, बुद्धि रूप) उपाधि का लय हो जाता है, जिस से आत्मा की अपने निज स्वरूप सच्चिदानन्द से एकता हो जाती है। और आनन्द का ज्ञान होने लगता है।

परन्तु चूंकि उस समय अनुभव के बताने वाले (इन्द्रियां, मन, बुद्धि) लय होने के कारण होते नहीं,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस लिए उस समय कोई यह नहीं बता सकता कि मैं (सच्चित) आनन्द का अनुभव कर रह हूँ। जागने पर जब अन्त: करण लीन अवस्था से वापस आ जाता है, तभी हम कह सकते हैं कि "खूब आनन्द से सोया।"

प्रशन १६

हमारा ध्येय आनन्द की प्राप्ति ही तो है, यदि वह मिलता है सुषुप्ति में, तब तो सोते रहना ही अच्छा है।

उत्तर

नहीं, सुषुप्ति अवस्था तमोगुणी अवस्थ है, अविद्या की अवस्था है। उस समय आनन्द का ज्ञान नहीं होता। इस लिए ध्येय की प्राप्ति सोते रहने से नहीं होगी। यह तो केवल एक नमूना दिखाया गया है। ध्येय की प्राप्ति के लिये जाग्रत अवस्था को इसी सुषुप्ति अवस्था के अनुसार बनाने की आवश्यकता है। श्री वसिष्ठ मुनि ने रामचन्द्र जी को उपदेश देते हुए यही कहा कि "हे राम जी, जाग्रत में भी सुषुप्तिवत हो के रहो" जिस का अर्थ यही है कि जाग्रत में जो अन्त: करण रूप उपाधि, समान रूप से व्याप्त सत्ता में विघ्न डाल कर द्वैत की प्रतीति करा रही है, और हमारे और व्यापक सच्चिदानन्द के दरम्यान एक पर्दा सा बन कर के खड़ी हो जाती है, उस उपाधि को transgress कर के हर समय उस आनन्द तत्त्व की प्राप्ति की जाए, केवल सुषुप्ति, समाधि या मुक्ति में नहीं। वह आनन्द तीनों कालों में, तीनों अवस्थाओं में, निरन्तर और समभाव से हर स्थान पर व्यापक है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

BVBSSMV

उपाधि भेद कोई भेद नहीं होता।

प्रश्न १७

कितना बिपरीत कथन है! भेद है तभी तो उपाधि "भेद" कहा गया है। "भेद है" और "भेद नहीं है" यह दोनों बिपरीत बातें कैसे ठीक हो सकती हैं?

उत्तर

यह कथन बिपरीत नहीं है, केवल अलग अलग दृष्टिकोण से कहे गए हैं, इस लिए बिपरीत प्रतीत होते हैं। उपाधि "भेद" जाहिरा तौर पर नज़र आने वाले भेद की दृष्टि से कहा जाता है, और "भेद नहीं है" यह वास्तविकता के दृष्टिकोण से कहा जाता है। उपाधि भेद कोई भेद नहीं होता, इस तथ्य को समझने के लिए एक दृष्टान्त लेते हैं :-

फ़र्ज़ करो (परमात्मा न करे) दिल्ली पर किसी शत्रु के हमला करने की सूचना आ गई है। इस लिए self defence के लिए फ़ौज को शहर में नियुक्त कर दिया गया है। सख़्त गर्मी के दिन हैं। फ़ौज को ठन्डा पानी supply करने के लिए सैंकड़ों कुम्हारों को मिट्टी के घड़े बनाने पर लगा दिया गया है। उन्हों ने रातों रात हज़ारों बड़े २ मटके त्यार कर दिये, जिन में से हर मटके में दस दस मन पानी आ जाए। राम बाग़ के सब मैदानों का एक इन्च भी ऐसा नहीं बचा, जहां यह मटके न पड़े हों। एक २ मटके में दस दस मन तो आकाश

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भर ही गया हो गा, और हज़ारों मटके बने हैं, तो (ज़्यादा नहीं तो) चालीस पचास हज़ार मन आकाश उन में भरा ही गया। और इतना ही इस महान आकाश में से कम हो जाना चाहिये, जिस से आकाश में बड़ी हल चल मच जानी चाहिये। परंतु दूसरों को तो छोड़ो, राम बाग़ में रहने वाले व्यक्तियों को भी सवेरे उठकर ही पता चला, कि रातों रात इतने मटके बन गए हैं। यदि ज़रा भर भी भेद आकाश में हुआ होता, तो कोई धमाका उठता, या वहां रहने वाले लोगों के दम घुटते, या कोई तो परिवंतन आकाश में होता। परंतु बिल्कुल ही नहीं, आकाश टस से मस भी नहीं हुआ।

ठीक इसी प्रकार करोड़ों मनुष्यों के अंतः करण रूप उपाधियां भले ही हैं, इन उपाधियों के अंदर आए हुए सच्चिदानंद से, बाहिर के व्यापक सच्चिदानंद में रति भर भी घटता नहीं होती। वह वैसे ही अपनी महिमा में स्थित है, जैसा कि उस से पहिले या उस के बाद। इस लिए उपाधि से अपनी दृष्टि को हटा कर एक अखंड सच्चिदानंद का आत्मा रूप से ज्ञान और अनुभव प्राप्त कराना ही वेदांत का ध्येय है।

प्रश्न १८

मगर अद्वैत से बनता ही क्या है ? पानी, पानी में मिलकर पानी हो गया, तो क्या हुआ ? आनंद तो इस में है कि पानी भी हो और मछली भी हो, (अर्थात द्वैत हो) मछली पानी में कलोल कर के आनंद ले, उसी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में अपना जीवन यापन करे, बल्कि वही पानी ही उस के जीवन का एक मात्र आधार बन जाए ।

उत्तर

बिल्कुल ठीक है । भक्त को भगवान की भक्ति में आनंद की प्राप्ति होती है । और यह तभी होता है, जब भक्त भी हो और भगवान भी हो (अर्थात द्वैत हो) । वेदान्त को इस में इन्कार कैसे हो सकता है ? क्योंकि अद्वैत की प्राप्ति इसी द्वैत (भक्ति) के रास्ते से ही तो होनी है । उस के लिए कोई अलग रास्ता थोड़ा है !

भक्ति और वेदान्तक ज्ञान को अलग समझना भूल है । जिस अवस्था में एक भक्त यह समझता है कि "मैं भक्त अलग हूँ और भगवान अलग हैं, मैं उन अपने स्वामी की सेवक भाव से भक्ति और आराधना करता हूं" इस द्वैत अवस्था का नाम "**अपरा भक्ति**" है । इस में "आनन्द" है (जैसा कि आप ने कहा), परन्तु "परम आनन्द" नहीं है । इस से ज़रा आगे परम आनन्द की अवस्था और है, जिस का नाम "**परा भक्ति**" है । उसको "**अनन्य भक्ति**" भी कहा गया है । यह वह अवस्था है, जब की वही भक्त जो अपने को भगवान से अन्य समझता था और भगवान के अतिरिक्त अपने व्यक्तित्व का अभिमान भी करता था, अब अनन्य भाव से कहता है "मैं नहीं" "भगवान ही भगवान है" । केवल कहना मात्र नहीं, बल्कि उस को हर एक वस्तु की "**सत्ता**" में भगवान की "सत्ता"

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की प्रतीति होती है । हर एक हलचल में भगवान की "चेतनता" स्पष्ट रूप से दीखती है, और हर एक सुख में भगवान की ही "आनन्दता" का अनुभव होता है। उस अवस्था में वह कह उठता है "सिया राम मय सब जग जानी", "वासुदेव : सर्वम्" "ईशावास्यमिदं सर्वं" "ओमित्येकाक्षरमिदं सर्वं" "अयं आत्मा ब्रह्म" "अहं ब्रह्मास्मि" । यह वह अवस्था है जब कि वह भक्त (या सेवक, या जिज्ञासु) अपने शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार से ऊपर उठ जाता है । अपने भगवान (यदि वह साकार का उपासक भी है) के आकार की उपाधि तक भी सीमित नहीं रहता, बल्कि उस आकार के "परम भाव", सच्चिदानन्द ब्रह्म को और अपने शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार में व्यापक सच्चिदानन्द को "अनन्य", "अद्वैत" और "एक" अनुभव करता है। वह "ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल" तक में उसी भगवान, सच्चिदानन्द का दर्शन करता है। उसके लिए जड़ चेतन का (भेद रहते हुए भी) कोई भेद नहीं रहता, क्योंकि हर वस्तु उसे एक अखण्ड सत्ता चेतनता और आनन्दाता ही प्रतीत होती है । यही भक्ति है, यही ज्ञान है । भक्ति और ज्ञान को अलग अलग मानना भूल है । हां, ज्ञान अपरा भक्ति से अगला ही आखरी कदम तो है ।

पहली अर्थात (द्वैत अवस्था) में मछली पानी रूप आधार की चेष्टा करती थी, अब अद्वैत अवस्था में (पानी में मिल कर पानी हो जाने में) वह स्वयं मछली

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का आधार बन जाता है, जिस में न केवल मछलियां बल्कि बड़े बड़े मगर मच्छ भी कलोल करके आनन्द लें, उस में अपना जीवन यापन करें। अब तो उनके जीवन के लिए वह स्वयं आधार बन गया है ॥

प्रश्न १९

यह तो भले ही माना जा सकता है, कि "मै नहीं, भगवान ही भगवान है", परन्तु "अहं ब्रह्मास्मि" यह कैसे हो सकता है?

यह तो अतिमान मूलक और अभिमान सूचक वचन हैं। अभिमान तो आसुरी गुण है। आसुरी प्रकृति वाला अपने आप को ब्रह्म कहे, यह कितना अनर्थ है! और प्रश्न ३ के उत्तर में आप ही ने तो कहा था कि "अहं ब्रह्मास्मि" कहना बिल्कुल ग़लत है।

उत्तर

हम को इन दो वाक्यों—"मैं नहीं, भगवान ही भगवान है" और "अहं ब्रह्मास्मि" में जो भेद की प्रतीति हो रही है, यह हमारी भूल है, और इसका कारण विचार की कमी है। जो कुछ हम ने इस समय तक श्रवण किया है, यदि उस पर पूरा मनन हुआ होता, तो हमारे मन में ऐसी शंका उठती ही न, या उसका समाधान हम ने स्वयं ही कर लिया होता।

देखें, अवल तो उस अवस्था में "मैं", "भगवान",

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"अहं", "ब्रह्म" कुछ कहते बनती ही नहीं, क्योंकि भगवान या ब्रह्म का साक्षात्कार तभी होगा जब अन्तः करण की उपाधि का लय हो चुका होगा। यही अन्तः करण, जो "मैं", "भगवान", "अहं", या "ब्रह्म" कहने वाला था, वह रहा ही नहीं, तो अब कहे कौन!

और जब वह उस अनुभूत परमानन्द का स्मर्ण कर के कहता है कि "मै नहीं, भगवान ही भगवान है" तो उसका अर्थ यह है, कि सब कुछ सच्चिदानन्द ही हैं, मैं भी वही हूं, मेरी सत्ता उस से भिन्न नहीं है। जब भगवान के सिवा और कुछ है नहीं, तो "मैं" कैसे रहा? ठीक यही अर्थ "अहं ब्रह्मास्मि" के हैं। इस का अर्थ है कि मैं ब्रह्म ही हूँ, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हूं, उस से भिन्न मेरी सत्ता कोई नहीं है। दोनों वाक्यों में शरीर, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को वह दोनों वक्ता पीछे छोड़ चुके हैं। इनमें से किसी में भी उस का "अहं भाव" (जो उस को भगवान या सच्चिदानन्द ब्रह्म से अलग कर रहा था) नहीं। अब उन दोनों वक्ताओं का "**अहं प्रत्यय**" भगवान, ब्रह्म, सच्चिदानन्द में है। यह "अहं" अभिमान का सूचक नहीं है, क्योंकि अभिमान करने वाला अहंकार तो रहा ही नहीं, लय को प्राप्त हो चुका है। इस लिए आसुरी गुण की उत्पत्ति नहीं हो सकती, और अनर्थ की कोई सम्भावना नहीं।

प्रश्न ३ के उत्तर में ठीक ही कहा गया था कि

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"अहं ब्रह्मास्मि" "कहना" बिल्कुल ग़लत है, क्योंकि यह किसी दूसरे को कहने की चीज़ नहीं है, यह ढन्ढोरा पिटवाने की वस्तु थोड़ी है ! यह तो अपने अनुभव की चीज़ है। यह तो ख़ज़ाना है, जिसे गुप्त ही रखा जाना आवश्यक है। किसी व्यक्ति के पास एक हज़ार रुपया हो, तो उस को भी वह fire-Proof iron safe में रखता है और ऐसे गुप्त ताले लगाता है कि किसी को पता तक भी न लग सके कि यह खुलता कहां से है। और यदि रुपया निकालना हो, तो ऐसे समय में और ऐसी रीति से निकालता है, कि कोई देख न ले। यह सब इस लिए कि कोई इसे चुरा न ले या इसे आग न लग जाए ॥ और यह सम्पत्ति जो अर्बों रुपये से भी कहीं अधिक है और जिस का मूल्य आंका जा ही नहीं सकता, उसका ढन्ढोरा पीटने से यह ख़ज़ाना या तो अहंकार और अभिमान के चोरों से चुरा लिया जाएगा, और या दम्भ और मिथ्याचार की अग्नि में स्वाहा हो जाएगा। इतने जन्म जन्मान्तरों में किए पुरूषार्थ से कमाए हुए इस धन का थोड़ी सी असावधानी से लुट जाना सम्भव हो सकता है। इस लिए इस की रक्षा में पूर्ण सावधानी की आवश्यकता है। और जब कभी किसी पात्र को इस धन में से कुछ देना हो, तो उस समय तो विशेष सावधानी की आवश्यकता है, कि कहीं इन अहंकार और अभिमान रूप चोरों की नज़र इस पर न पड़ जाए ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रश्न २०

मेरा सम्बन्ध सारी आयु भर, इस समय तक, आर्य्य समाज से रहा है। समाज आत्मा और परमात्मा को अलग अलग मानता है। इनको एक मानना तो समाज के सिद्धान्त पर कुठाराघात है।

उत्तर

यदि हम, इस प्रश्न पर ज़रा विशाल हृदय से, अपने सशंय की निवृति के लिए श्रद्धापूर्वक विचार करें, तो हम देखेंगे कि वेदान्त का सिद्धान्त न केवल समाज के सिद्धान्त पर कुठारघात नहीं, बल्कि बिल्कुल वही का वही सिद्धान्त है, जिस को समाज मानता हैं। इस विषय पर काफ़ी विचार करना आवश्यक है, इस लिए शान्ति पूर्वक श्रवण अनिवार्य है।

देखिये, आर्य समाज के सिद्धान्त दस नियमों में एकत्र कर दिए गए हैं, और इन्हीं नियमों की नींव पर ही आर्य समाज रूपी विशाल भवन का निर्माण हुआ है। इनमें से सब से पहिला नियम यह है "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है"। "**सत्य**" विद्या कहने से दूसरी "**असत्य**" विद्या स्वयमेव understood (ग्रहण) हो जाती है। विद्या के यह दो भाग श्री स्वामी जी ने वेदान्त अर्थात उपनिषद् (मुण्डकोपनिषत्, प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड के चौथे मन्त्र) के आधार पर किए हैं। वहां इन दो विद्याओं का नाम "**परा**" विद्या और "**अपरा**"

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्या दिया हुआ है ।। शौनक ऋषि के ऋषि अङ्गिरस से यह प्रश्न करने पर "कि वह कौन सी वस्तु है, जिस का ज्ञान हो जाने पर इस सारे संसार का ज्ञान हो जाता है ?" उन्हों ने कहा, "द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्म विदो वदन्ति, **पराचैवापरा च**" (अर्थात् दो विद्याएं जाननी चाहिएं, जिनको ब्रह्मवेत्ता लोग परा और अपरा कहते हैं) अगले पांचवें मन्त्र में श्रुति स्वयं ही इन दोनों के लक्षण (definitions) बतलाती है, "**तत्रापरा**, ऋगवेदो, यजुर्वेद :, सामवेदो ऽथर्ववेद :, शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरूक्तं, छन्दो, ज्योतिषमिति" दूसरे शब्दों में **अपरा** विद्या **सांसारिक** ज्ञान का नाम है। और "अथ **परा**, यया तदक्षरमधिगम्यते" (परा उस ज्ञान का नाम है, जिस से वह अक्षर (परमेश्वर) जाना जाता है) । दूसरे शब्दों में **परा** विद्या **पारमार्थिक** ज्ञान का नाम है । अब, इस का मिलान समाज के पहले नियम के साथ करने से प्रत्यक्ष प्रतीत होगा कि वहां बतलाई हुई "सत्य विद्या" वेदान्त में बतलाई हुई "परा विद्या" का ही उलथा हैं, और "विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं" वेदान्त में बतलाई हुई "अपरा विद्या" का ही उल्था है । इन दोनों विद्याओं का (परा और अपरा का) आदि मूल परमेश्वर है ।

चूंकि इस सत्य विद्या (परा विद्या) की प्राप्ति का साधन वेद हैं, इसी लिए तीसरे निम में वेद का पढ़ना

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों के लिए **परम धर्म** कहा गया है। वेद के तीन कांड हैं

(१) "कर्म काँड", जिस से मन की शुद्धि हो कर "**मल दोष**" की निवृति होती है।

(२) "उपासना कांड", जिस से मन की चंचलता दूर हो कर "**विक्षेप दोष**" दूर होता है।

(३) "ज्ञान काँड", जिस से "**अज्ञान**" की निवृति होकर "**आवरण दोष**" दूर होता है।

वेद के इन तीन सिद्धान्तों में से ज्ञान कांड चूंकि अन्तिम सिद्धान्त हैं, इस लिए इसको "**वेदान्त**" (अर्थात वेद का अन्तिम सिद्धान्त) कहा गया हैं। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है, और उसका प्रतिपादन वेद के ज्ञान कांड (अन्तिम सिद्धान्त, वेदान्त) में है, इस लिए न केवल यह आर्य समाज के सिद्धान्त पर कुठाराघात नहीं, बल्कि इस का "पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का **परम धर्म** है" जैसा कि तीसरे नियम में बताया गया है।

और देखिये, पहिले नियम में परा और अपरा विद्या के आदि मूल जिस परमेश्वर का संकेत किया गया हैं, दूसरे नियम में उस के लक्षण दिए गये हैं। उन सब लक्षणों पर विचार करने का प्रसंग तो यह नहीं, प्रसंग वश केवल "सर्वव्यापक", "सच्चिदानन्द स्वरूप" और

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"निराकार" इन तीन लक्षणों पर ही विचार करने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि इन लक्षणों के मानने का अर्थ है वेदान्त को मानना ॥

निराकार का अर्थ है, आकार (स्थूलता) से रहित अर्थात सूक्ष्म। जितनी जितनी कोई वस्तु सूक्ष्म होगी, उतनी वह व्यापक होगी। स्थूल शरीर से इन्द्रियां सूक्ष्म हैं इस लिए स्थूल शरीर से अधिक व्यापक हैं, इन्दियों से मन ज्यादा सूक्ष्म है, इस लिए इन्द्रियों से ज्यादा व्यापक है, इसी प्रकार (क्रम से) मन से बुद्धि, बुद्धि से महतत्त्व, महतत्त्व से अव्यक्त, और अव्यक्त से भी सूक्ष्म और व्यापक परमेश्वर है। परमेश्वर से ज्यादा सूक्ष्म या व्यापक कोई नहीं है, इसी लिए उसको **"सर्व व्यापक"** वेदान्तों (उपनिषदों) में कहा गया है। और इसी लिए दूसरे नियम में परमेश्वर के लक्षणों में एक लक्षण "सर्व व्यापक" दिया गया है।

सर्व व्यापक का अर्थ है, अणु अणु और परमाणु परमाणु में व्यापक। परमाणु का अर्थ है वह छोटे से छोटा ज़र्रा, जिस का (किसी भी यन्त्र से) आगे भाग न हो सके। उस ज़र्रे पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें, तो वास्तव में वह वही वस्तु ही है, जिस को हम उस जर्रे में व्यापक कह रहे हैं। इस को स्पष्ट समझने के लिए एक तज्जर्बा (experiment)करते हैं :-

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बर्फ का एक टुकड़ा लिया, उस के दो भाग किए। उन में से एक के फिर दो भाग किए। फिर उन दो में से एक के दो भाग किए। इसी तरह भाग करते जाने के बाद क्या देखते हैं, कि उस बर्फ का आख़री ज़र्रा पानी है, बर्फ़ का उस में नामो निशान भी नहीं कहने को तो, हम कहते हैं कि पानी बर्फ के अणु अणु और परमाणु २ में व्यापक हैं। यैने बर्फ के उस जर्रे में भी पानीं व्यापक हैं, जिस जर्रे का आगे भाग नहीं हो सकता, उस को कहने को, तो हम ने बर्फ का जर्रा कह दिया, परन्तु वास्तव में हैं वह, उस में व्यापक होने वाली वस्तु, अर्थात पानी।

ठीक इसी तरह 'परमाणु' को कहने को तो, हम परमाणु कह देते है, परन्तु वास्तव में है वह उस में व्यापक होने वाली वस्तु, अर्थात परमेश्वर। इसी प्रकार जब हम कहते हैं "परमात्मा आत्मा में व्यापक है", तो उसका वास्तविक अर्थ यह होता है कि 'आत्मा' अपने में व्यापक होने वाली वस्तु ही है अर्थात "परमात्मा"॥ इस लिए परमेश्वर को सर्व व्यापक मानना ही वेद के (अन्तिम) सिद्धान्त, वेदान्त को मानना है।

सच्चिदानन्द स्वरूप (सत+चित्+आनन्द) का अर्थ है सत् स्वरूप, चेतन स्वरूप और आनन्द स्वरूप। जिस प्रकार पानी जहां पर ही है, वह समुद का ही है (चाहे वह रेगिस्तान में भी हो) समुद्र से भिन्न पानी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो ही नहीं सकता । अग्नि जहां पर ही है, वह सूर्य की ही है, (चाहे वह पृथिवी से भी हज़ारों फ़ीट नीचे हो), सूर्य से भिन्न अग्नि हो ही नहीं सकती । स्थूल वस्तु जहां पर ही है वह पृथिवी की ही है (चाहे वह आकाश में हज़ारों फ़ीट ऊपर ज़रों के रूप में हो) पृथिवी से भिन्न स्थूल वस्तु हो ही नहीं सकती । इसी प्रकार सुख (आनन्द) जहां पर है वह सच्चिदानन्द का ही है (चाहें वह विषयों में भी हो) सच्चिदानन्द से भिन्न सुख हो ही नहीं सकता ।

चेतनता जहाँ पर ही है, वह सच्चिदानन्द की ही है (चाहे वह क्षुद्र से क्षुद्र कीड़े में भी हो) सच्चिदानन्द से भिन्न चेतनता कहीं हो ही नहीं सकती ।

सत्ता जहाँ पर ही है, वह सच्चिदानन्द् की है (चाहे वह छोटी से छोटी अथवा बड़ी से बड़ी वस्तु भी हो)- सच्चिदानन्द् से भिन्न किसी वस्तु की सत्ता हो ही नहीं सकती। इस लिए परमेश्वर को 'सच्चिदानन्द् स्वरूप' मानना ही वेद के (अन्मि) सिद्धान्त, बेदान्त को मानना है ॥

शब्द सिद्धान्त पर विचार कर लेना भी आवश्यक है । 'सिद्धान्त' तो सीढ़ियां हैं, जो ऊपर वाली मन्ज़िल पर चढ़ने के साधन हैं, वह स्वयं ऊपर वाली मन्ज़िल तो नहीं हैं । एक सीढ़ी पर चढ़ कर यदि उसको ही

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपना कर बैठ जाया जाए और दूसरी सीढ़ी पर चढ़ना अपने सिद्धान्त पर आघात समझ लिया जाए, तो ऊपर वाली मन्जिल पर कभी पहुँचा जा ही नहीं सकता। यदि मन्ज़िल पर पहुँचना नहीं है, तब तो बात दूसरी है, यदि पहुँचना ही है, तो पहिली सीढ़ियों को छोड़ना ही पड़ेगा और उत्तरोत्तर सीढ़ियों को अपनाना ही पड़ेगा। इस में कोई आपत्ति की बात नहीं है और न ही यह कोई पाप है। पाप तो, इस के विपरीत, किसी सीढ़ी पर आग्रह पूर्वक डट कर बैठ जाना है। यदि एम० ए० पास करना है तो प्राइमरी, मिडल, मैट्रिक, एफ० ए० की श्रेणियों को त्यागना ही पड़ेगा, यदि इन में से किसी एक पर ही डट गये, तो एम० ए० पास करना असम्भव है।

प्रश्न २१

यदि बात ऐसी होती तो स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में इसका खण्डन क्यों किया है ?

उत्तर

स्वामी जी बड़े भारी रीफ़ार्मर (Reformer) थे। जिस २ क्षेत्र में उन को बुराई दिखाई पड़ी, जिस से जनता का अनहित होता था, उस बुराई को हटाने के लिए न केवल प्रबल आवाज़ उठाई, बल्कि निर्भय हो कर उन्हों ने उस बुराई को दूर करने का प्रबल प्रयत्न किया। चाहे इस प्रयत्न में थोड़ों को थोड़ी हानि भी पहुँचती थी, तो भी उस की परवाह न करके उन्हों

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने, बहु जन को जिस से लाभ हो, ऐसी बात करने से कभी चूक नहीं की ।

केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि धार्मिक, सामाजिक, और राजनैतिक क्षेत्रों में भी बल्कि उन सभाओं और सोसाइटियों में भी, जिन का ध्येय जनता जनार्दन की सेवा मात्र होता है, उन में भी धूर्त और पाखण्डी लोग घुस कर उनके उद्देशों का दुरूपयोग करते हैं। इसी लिए तो ड० जान्सन ने कहा है, "Patriotism is the last resort of a scoundrel" (धूर्तों के लिए देश भक्ति आख़री शरणय है) गांधि टोपी और खद्दर के कपड़े पहन कर हज़ारों धूर्तों और पाखण्डियों ने कांग्रेस जैसी देश-सेवक संस्था को भी बदनाम करके रख दिया है ।

इसी प्रकार आध्यात्मक क्षेत्र में भी ऐसे पाखण्डी, केवल साधारण वेष में ही नही, बल्कि सन्यासियों के से भगवे कपड़े पहन कर उपनिषदों के इस परम तात्त्विक गूढ़ विज्ञान का दुरोपयोग कर रहे थे । ऐसी महान बुराई भला स्वामी जी से कैसे बर्दाश्त हो सकती थी ! इसी लिए उनको, ऐसे ठगों से प्रजा की रक्षा करने के निमित्त, ऐसी कड़ी समालोचना करनी आवश्यक थी । स्वामी जी एक जगह (सत्यार्थ प्रकाश में) लिखते हैं कि एक सन्यासी से पूछा गया "सुनाइए जी ! आप क्या करते हैं" उस ने उत्तर दिया, "हम ने करना कराना क्या है ? हम तो ब्रह्म हैं, ब्रह्म अकर्ता है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने कराने से हमारा क्या प्रयोजन ?" स्वामी जी ने खण्डन किया है, तो ऐसे मिथ्याचारों के लिए किया है, स्वयं ब्रह्म-निष्ठ हो कर वह ब्रह्म-निष्ठा का खण्डन कैसे कर सकते हैं ! वह न केवल वेदान्त विज्ञान का खंडन ही नहीं करते, बल्कि उस का प्रतिपादन करते हैं, जैसा कि "सत्यार्थ प्रकाश" (वैदिक यन्त्रालय मुद्रित, दयानन्दाब्द १२२-सं० २००३ विक्रमी) से उद्धरित निम्न लेखों से स्पष्ट प्रतीत होगा :-

(१) पृष्ठ १५२-१५३ में वह लिखते हैं, "इन पाँच क्लेशों (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) को **योग अभ्यास** विज्ञान से छुड़ा के ब्रह्म को प्राप्त हो के मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिये" ! योग अभ्यास के लिए उन्हों ने ज्यादा तर ज्ञान योग (वेदांन्त) का ही प्रतिपादन किया है (जो अभी आगे स्पष्ट हो जाएगा)। पतंजलि मुनि के राज योग से उन्हों ने केवल यम और नियमों का ही उल्लेख किया है । परन्तु यदि उन का अभिप्राय अष्टांग योंग से भी हो, तो भी ब्रह्म प्राप्ति समाधि (आठवें अंग) में ही पहुँच कर होती है। और समाधि वह अवस्था है, जब कि एक अद्वितीय ब्रह्म का ही भान होता है. दूसरी कोई भी वस्तु (प्रकृति या आत्मा) प्रतीत नहीं होती । यदि किसी दूसरी वस्तु की प्रतीति होती है, तो वह समाधि की अवस्था ही नहीं ।

(२) पृष्ठ १२० पर स्वामी जी लिखते है, "समाधि

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है, तब वह कह सकता है कि **"यह जो मेरे में व्यापक है, वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है।"** एक साधारण से साधारण आर्य समाजी भी, जो आर्य समाज के सिद्धान्तों की वर्णमाला को समझता है, यह जानता है कि परमेश्वर मेरे अन्दर, बाहिर, हर वस्तु में, अणु अणु और परमाणु परमाणु में व्यापक है। फिर स्वामी जी का यह कहना "कि समाधि दशा में ही जब योगी को परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है, केवल उस दशा में ही वह यह बात कह सकता है," तो उन का यह कहना ब्रह्म के साधारण अर्थों में नहीं, बल्कि उन के इस कहने में उपनिषदों (वेदान्त) के मौलिक सिद्धान्त का गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है। हम साधारण मनुष्य अपने आप (अपनी आत्मा को) **अहंकार** के कारण ब्रह्म से भिन्न मानते हैं। परन्तु जब योगी इस "अहंकार" से ऊपर उठ कर समाधि दशा में पहुँच जाता है और परमेश्वर को प्रत्यक्ष कर लेता है, तब वह अनुभव करता है "कि अहंकार के होते हुए मैं जो अपनी हस्ती को अलग करके अहंकार और अभिमान किया करता था, वह भूल थी, वास्तव में तो "यह जो मेरे में ब्रह्म आत्मा व्यापक है, वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है"। दूसरे किसी (आत्मा) की भिन्न रूप से उपलब्धि नहीं होती। तब ही "ईशावास्यमिदं सर्वं" के तथ्य को वह समझता है, और तब ही उस का द्वैत रूप "शोक" और अज्ञान

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूप "मोह" दूर हो जाता है, "तत्र को मोह : क: शोक एकत्वमनुपश्यत :?"

और यह जो स्वामी जी ने कहा है "योगी को परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है।" वह आत्म रूप से ही प्रत्यक्ष हो सकता है। वरना अनन्त का प्रत्यक्ष किसी तरह भी सम्भव नहीं है। इन अन्त वाले शरीर, मन, बुद्धि, और अहंकार इत्यादि जड़ और "**दृश्य वर्ग**" से उस "**द्रष्टा**" का प्रत्यक्ष होना केवल मात्र असम्भव है ॥

(३) पृष्ट ११९ पर तो बिल्कुल स्पष्ट शब्दोंमेंही एकता का प्रतिपादन करते हैं, लिखते हैं :- "जीव समधिस्थ परमेश्वर में प्रेम बद्ध हो कर निमग्न होता है। वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म अविरोधी एक अवकाश हैं। जो जीव परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करता है, वही साधर्म्य से **ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है**"

(४) पृष्ट १५२-५३ पर बतलाए हुए पंच कोश, तीन शरीर, तीन अवस्थाएं और चौथी तुर्या अवस्था का विवरण करके लिखा है कि "इन सब कोश और अवस्थाओं से जीव पृथक है" और यही मन्तव्य वेदान्त का है। इन को पृथक करने से ही तो सर्वत्र एक अद्वितीय आत्मा का साक्षात्कार होता है। इन कोशों का विस्तृत विवरण इस पुस्तक के दूसरे भाग में होगा ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(५) उसीं पृष्ट १५२–५३ पर ज्ञान तथा मुक्ति के साधन बिल्कुल वही बताए गए हैं, जो वेदान्त के प्रक्रिया ग्रन्थों में दिए हैं। अर्थात साधन चतुष्टय:-

विवेक, वैराग्य, षडसम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितीक्षा, श्रद्धा समाधान) ममुक्षता ।। और श्रवण चतुष्टय:–

श्रवण, मनन, निधिध्यासन, साक्षात्कार इन सब का विस्तृत विवरण इस पुस्तक के तीसरे भाग में होगा।

(६) पृष्ट १५७ पर पातंजल योग (१-३) के सूत्र का अर्थ करते हुए स्वामी जी लिखते हैं :– "तदा द्रष्टु: स्वरूपे ऽवस्थानम्" "जब चित्त एकाग्र और निरोध होता है, तब सब के द्रष्टा **ईश्वर के स्वरूप में जीव आत्मा की स्थिति** होती है"। इस में "**स्थिति**" शब्द के रहस्य को जानना आवश्यक है। यह रहस्य वेदान्त (कठ उपनिषद् २-२-१५) ने हमारे लिए खोलकर रख दिया है :- यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति, एवम् मुनेर्विजानत आत्मा भवति, गौतम"।। कि जिस प्रकार शुद्ध जल में शुद्ध जल मिलकर एक हो जाता है, और यह नहीं बताया जा सकता कि कौनसा जल पहिले था, कौनसा बाद में मिलाया गया। दूसरा जल पहिले जल से मिल कर बिल्कुल वैसा ही हो जाता है, इसी प्रकार ज्ञानवान मुनि का आत्मा परमात्मा में मिल कर, बिल्कुल वैसा (परमात्मा) ही हो जाता है अर्थात ईश्वर के स्वरूप में ज्ञानी मुनि के जीव आत्मा की "स्थिति" हो जाती है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रश्न २२–

समाज आत्मा की स्थिति परमात्मा में इस दृष्टान्त के अनुसार नहीं मानता। हां, जैसा कि श्री नारायण स्वामी ने पातञ्जल योग की टीका "योगरहस्य" में लिखा है, यह स्थिति लोहे के गोले के अग्नि में पड़ जाने जैसी है। जिस में लोहा और अग्नि अलग उलग ही होतेहैं, एक नहीं हो जाते।

उत्तर :-

इस दृष्टान्त के अनुसार ईश्वर के स्वरूप में जीव आत्मा की स्थिति मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है। बात तो वही है। लोहा अग्नि में पड़ कर अग्नि के "गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव बना लेता है"। वह अग्नि ही हो जाता है, लोहा थोड़ा रहता है। वह अपनी लपटें वैसी मारता है, जैसे अग्नि। उस का रूप वैसे ही हो जाता है, जैसे अग्नि का। वह गरम वैसे ही होता है, जैसे अग्नि। वह दूसरी वस्तुओं को वैसे ही जला सकता है जैसे अग्नि ॥

प्रश्न २३–

परन्तु लोहा लोहा ही है, अग्नि अग्नि है, वह एक थोड़े हैं। अग्नि से बाहिर निकालने पर वही लोहे का लोहा।

उत्तर:–

अभी पिछले प्रश्न (२२) के उत्तर में सत्यार्थ प्रकाश

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के पृष्ठ ११९ से उद्धरित स्वामी जी के शब्दों पर हम विचार कर चुके हैं, जहां वह स्पष्टतया लिखते हैं "कि जो जीव परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करता है, वही साधर्म्य से **ब्रह्म के साथ एकता** कह सकता है"। इस तरह उपरोक्त दृष्टान्त में भी अग्नि में पड़ा हुआ लोहा अग्नि ही है, उस को लोहा कोई भी नहीं कह सकता। लोहा और अग्नि उस समय बिल्कुल एक ही हैं। इस प्रकार समाधि अवस्था में एकता में तो कोई संदेह ही नहीं। रहा प्रश्न अग्नि से बाहिर निकलने का, उस का तो प्रश्न ही नहीं है। हम तो अग्नि के अन्दर पड़े हुए लोहे का विचार कर रहे हैं, और दार्ष्टान्तिक में समाधिस्थ पुरूष का विचार कर रहे हैं। और यदि ऐसा प्रबन्ध कर लें कि अग्नि चौबीसों घन्टे और बारहों महीने जलती रहे और लोहा उस में पड़ा रहे। फिर तो वह सदा के लिए अग्नि रहेगा, लोहा नहीं रहेगा। इसी प्रकार दार्ष्टान्तिक में (जैसा कि उपरोक्त कठ उपनिषद् २-२-१५ में "विजानत मुनि" के आत्मा का उल्लेख किया गया है) अपने वास्तविक स्वरूप का **"दृढ़े अपरोक्ष"** ज्ञान हो जाने पर समाधि वाली स्थिति ही चौबीसों घन्टे और बारहों महीने रह सकनी सम्भव है। उस अवस्था को वेदान्तों ने **"जीवन मुक्ति"** का नाम दिया है। और शरीर छूटने के बाद की अवस्था को **"विदेह मुक्ति"**

प्रश्न २४

ऐसा मानने से तो शाश्वत और सदा के लिए मुक्ति

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का प्रसंग खड़ा हो जाएगा। स्वामी जी ने तो "सत्यार्थ प्रकाश" के पृष्ठ १५१ पर मुक्ति की अवधि बतलाई है, जिस अवधि के बाद जीव को इस संसार में फिर वापस आना पड़ता है।

उत्तर :-

इस विषय में भी ज़रा विस्तार पूर्वक विचार आवश्यक है। मुक्ति का अर्थ है छूटना। कोई बन्धा हुआ है, तो छूटेगा।

वह बन्धा हुआ कौन है? जीवात्मा।
किस से बन्धा हुआ है? शरीर से।

किस कारण बन्धा हुआ है? अपने वास्तिक स्वरूप के अज्ञान के कारण।

देखिए, जिस कारण से कोई बीमारी होती है, उस का इलाज़ उसके विपरीत कारण से ही हो सकता है, बीमारी का कारण गर्मी हैं तो उसका इलाज ठन्डी दवाइयों और शर्बतों से होगा। यदि बीमारी का कारण सर्दी है, तो उस का इलाज गर्म दवाइयों और काढ़े के प्रयोग से किया जाएगा। इसी प्रकार यहां बन्धन रूप बीमारी का कारण है "अपने वास्तविक स्वरूप का **अज्ञान**," उस का इलाज (यैने बन्धन से छुटकारा या मुक्ति की प्राप्ति) अज्ञान के विपरीत कारण (अपने वास्तविक स्वरूप के) **ज्ञान** से ही हो सकता है। इस के सिवा मुक्ति के प्राप्त करने का और कोई तरीका है ही नहीं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्म मुक्ति की प्राप्ति में सहायक अवश्य हैं, परन्तु वह उस के लिए साक्षात साधन (Direct Cause) नहीं हैं। क्योंकि उनका Jurisdiction ही मन की शुद्धि तक सीमित है। जैसे मैल चढ़े हुए शीशे से जब तक मैल और कालक छुटाई न जाए, तब तक उस में हम अपना चेहरा नहीं देख सकते। इसी प्रकार जब तक निष्काम शुभ कर्म करने से मन की शुद्धि नहीं हो जाती, तब तक उस में अपने स्वरूप को देखा नहीं जा सकता, यैने ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। परन्तु चूंकि ध्येय ज्ञान की प्राप्ति है, न कि मन की शुद्धि। इस लिए कर्मों से मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। हां, स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, जिस में जीव को सांसारिक अल्प भोगों की अपेक्षा दीर्घ कालिक दिव्य भोग भोगने के लिए मिलते हैं। परन्तु चूंकि कर्मों का फल अन्त वाला होता है, इस लिए उन के समाप्त हो जाने पर जीव का इस ससार में वापस आना पड़ता है। और यह बात वेदान्त को भी मान्य है। प्रश्न उपनिषद् (१-३) में पिप्पलाद मुनि कात्यायन ऋषि के प्रश्न के उत्तर में कहते हैं, "तद्ये ह वै तदिष्टा पूर्त कृतमित्युपासते, ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते त एव पुनरावर्तन्ते"। (अर्थात जो लोग इष्टापूर्त रूप कर्म मार्ग का अवलम्बन करते हैं, वे चन्द्र लोक पर ही विजय पाते हैं। और वे ही पुनः आवागमन को प्राप्त होते हैं) गीता भी इस बात का समर्थन करती है, चुनाँचि अध्याय ९ के २१ वें श्लोक में कहा गया है "ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोकं

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" अर्थात वह–सकाम कर्मी पुरूष — उस विशाल स्वर्ग लोक को भोग चुकने पर, पुण्य का क्षय हो जाने पर इस मृत्यु लोक में लौट आते हैं। स्वामी जी ने इस कर्म – जन्य मुक्ति को दृष्टि में रख कर ही मुक्ति का अर्थ किया है। और वह स्वयं भी पृष्ट १५१ पर इस बात को (इस सम्बन्ध में की हुई शंका का समाधान करते हुए) स्पष्ट कर देते हैं कि मुक्ति से उन का दृष्टि कोण कर्म-जन्य मुक्ति ही है। चुनांचि वह लिखते हैं: "यदि ईश्वर अन्त वाले कर्मों का (क्योंकि बड़े से बड़े और अच्छे से अच्छे कर्म का फल भी आखिर अन्त को प्राप्त हो जाता है) अनन्त फल (शाश्वत मुक्ति) देवे, तो उस का न्याय नष्ट हो जाए"।

परन्तु इस कर्म-जन्य मुक्ति के अतिरिक्त ज्ञान-जन्य मुक्ति है, जो अपने वास्तविक स्वरूप का ब्रह्मरूप से दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान हो जाने पर प्राप्त होती है। उस (मुक्ति की) अवस्था के प्राप्त हो जाने पर जीव को फिर इस संसार में वापस आने का कोई कारण बाकी नहीं रह जाता। चुनांचि ऊपर उद्धरित किए हुए प्रश्न उपनिषद् (१-९) से अगला ही मन्त्र (१-१०) कहता है— "अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्यात्मानमन्विष्य आदित्यमभि जयन्ते। एतद्वै प्राणानामायतनम् एतदमृतम् अभयमेतत्परायणम् **एतस्मान्न पुनरावर्तन्ते**" (अर्थात तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा, और विद्या द्वारा आत्मा की खोज करते हुए वे उत्तर मार्ग द्वारा सूर्य लोक को प्राप्त होते हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यही प्राणों का आश्रय है, यही अमृत है और यहीं परा-गति है। **इस से फिर नहीं लौटते**") स्पष्ट है कि विद्या (ज्ञान) द्वारा आत्मा की खोज हो जाने के बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। गीता में भी श्लोक (८-१६) में स्पष्ट कह दिया गया है, "मामुपेत्य तु कौन्तेय, **पुनर्जन्म न विद्यते**" अर्थात "मुझ को (यैने ब्रह्मात्मा को, परमेश्वर को) प्राप्त होने पर **फिर जन्म नहीं होता**"

इस प्रकार हम ने देख लिया कि स्वामी जी की अवधि वाली बताई हुई मुक्ति का तात्पर्य कर्म-जन्य मुक्ति (यैने ब्रह्मलोक तक भिन्न भिन्न लोकों की प्राप्ति) है। उस से आगे ज्ञान-जन्य मुक्ति है, जो शाश्वत है। इस लिए वह शाश्वत मुक्ति स्वामी जी के सिद्धान्त से विरूद्ध नहीं। केवल उन्हों ने उस का जान बूझ कर उल्लेख नहीं किया।

प्रश्न २ —

इतना कुछ सुनने के बावजूद भी परमात्मा के साथ एकता जचती नहीं है, हम अल्पज्ञ, पापी और सर्वथा दुःखों से पीड़ित मनुष्य भला परमात्मा हो ही कैसे सकते हैं ?

उत्तर—

ठीक है, इस परम तथ्य का जचना टेढ़ी सी खीर ही है। इस का कारण हैं हमारे जन्म जन्मान्तरों के संस्कार। "मनुष्य" का अर्थ है "मनन शील"। मनुष्य का चोला प्राप्त कर के भी हम ने इस रहस्य का मनन नहीं किया। यदि यह हमें

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जचता नहीं है, तो इस का कारण बह नहीं कि वेद के इस परम सिद्धान्त में कोइ कमी है, बल्कि इस का कारण इस सिद्धान्त पर मनन और विचार में कमी है। जब तक हम शुभ कर्मों द्वारा मन की शुद्धता और उपासना (भक्ति) द्वारा मन को एकाग्रता का लाभ नहीं कर लेते, तब तक हमारी दृष्टि शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार तक ही सीमित रहेगी। हालांकि गन्दे नाले का पानी(बतौर पानी के) बिल्कुल वही है, जो गंगा का पानी है। परन्तु अपने आप को गंगा से अलग मान कर (यैने अलग रख कर) गन्दा नाला स्वयं भी ('गन्दा' कहलाने के घृणास्पद शब्द से) दुःखी है, और दूसरों को भी अपनी गन्दगी के कारण दुःखी करता है। ज्योंहि वही गन्दा नाला अपने आप को गंगा मानने लगता है (यैने गंगा में मिल जाता है) त्योंहि न केवल दूसरों के लिए दुखदाई नहीं रहता, न केवल 'गन्दा नाला' न कहला कर गंगा हो जाता है, बल्कि अब (गंगा से अभिन्न) उसी गन्दे नाले के पानी में नहाने से लोग पुण्य का लाभ करते हैं।

हमें इस बात को बार २ ज़हन-नशीन करना होगा, कि परमात्मा से एकता केवल शुद्ध आत्मा की ही है, न कि शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार की। यदि यह एकता हम को नहीं जचती, और हम अपने आप को अल्पज्ञ, पापी और सर्वथा दुःखों से पीड़ित मानते हैं, तो इस का कारण यही हैं, कि हम शरीर, मन, बुद्धि, और अहंकार के स्तर पर खड़े हैं। एकता प्राप्ति के लिए हमें इस स्तर से

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऊपर उठना होगा । अपने अहंकार को (जिस ने हमें भिन्न कर रखा है, और अल्पज्ञ, पापी और सर्वथा दुःखों से पीड़ित कर रखा है) सर्वथा मिटा देना होगा। यैने अपने अहंकार को (जिस को हम भूल से अपना आप समझ बैठे हैं) सर्वथा परमात्मा के समर्पण कर देना होगा, जैसे गन्दे नाले ने अपने आप को सर्वथा गंगा के समर्पण कर दिया था। जैसे वह गन्दा नाला समर्पण के पश्चात गन्दा नाला न रहा, इसी प्रकार हम अपने आप को परमात्मा के समर्पण करने के बाद, अल्पज्ञ, पापी और दुःखों से पीड़ित नहीं रहेंगे। बल्कि परमानन्द स्वरूपता का लाभ कर लेंगे।

प्रश्न २६—

यह को केवल Theory ही है, इसका Practical लाभ क्या और कैसे होगा ?

उत्तर—

इस Theory को Practice में लाने के लिए आचार्यों ने प्रक्रिया-ग्रन्थों में कुछ साधन बताए हैं, जिन को प्रयोग में ला कर हम उस परमानन्द स्वरूपत्ता का लाभ कर सकते हैं। इन साधनों का विस्तृत विवरण इसी पुस्तक में आगे किया जाएगा ।

इस आत्मैक्य प्रतिपादन से क्या लाभ होगा, इसका विचार हम ऊपर कर चुके हैं, फिर दहोरा देते हैं:-

(१) अहंकार ही सब दुःखों का स्रोत है। इस के नाश

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो जाने से संसार में हम को सुख ही नहीं, बल्कि परम-आनन्द का लाभ होगा।

(२) नानात्व रूप अज्ञान मिट जाएगा, और एकत्व रूप ज्ञान का सूर्य प्रखर रूप से चमकने लगेगा।

(३) संसार भर में आध्यात्मिकता का प्रसार हो जाएगा और भौतिकवाद (materialism) का ज़ोर कम हो जाएगा।

(३) वेदान्त भ्रातृभाव ही नहीं बल्कि आत्मभाव सिखाता है। भाई भाई में फिर भी द्वेष की सम्भावना हो सकती है। अपने आप से कोई भी द्वेष नहीं कर सकता। जब सर्वत्र एक ही आत्मा (अपना आप) हो, दूसरे को दूसरा न समझ कर अपना आप ही समझा जाए, तो दूसरा न होने ने कौन किस से द्वेष करेगा ?

(५) द्वेष के मिट जाने से परिवारों में शान्ति होगी, देशों में शान्ति होगी, राष्ट्रों में शान्ति होगी, समस्त पृथ्वी पर और सर्वत्र शान्ति ही शान्ति होगी। कलह, लड़ाई, झगड़े, युद्ध, इर्षा, द्वेष, सब मिट जाएंगे। संसार स्वर्ग धाम बन जाएगा॥

प्रश्न २७—

शान्ति की बातें तो केवल बातें ही हैं, संसार में तो इस से बिल्कुल विपरीत ही हो रहा है। ऐटम बम और हाईड्रोजन बम शान्ति फैलाने के लिए थोड़े बनाए जा रहे हैं ? उनसे अशान्ति ही तो फैल रही है। संसार भर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को हर समय भय लगा हुआ है, कि युद्ध अभी छिड़ा कि अभी छिड़ा ।

उत्तर –

ठीक है, आजकल हर तरफ़ संसार में अशान्ति ही अशान्ति फैली हुई है । परन्तु इन बमों के बनाने वाले भी यह तो नहीं कहते कि बम अशान्ति फैलाने के लिए बनाए जा रहे हैं, बल्कि उन में से हर एक पक्ष संसार में शान्ति स्थापन करने का दावेदार है । हर एक पक्ष यह समझता है कि उस के शक्तिशाली हो जाने पर, दूसरा पक्ष उस से भय भीत होकर अशान्ति न फैला सकेगा । परन्तु यह बड़ी भूल है, क्योंकि इस तरह तो हर एक पक्ष दूसरे से ज्यादा शक्तिशाली बनने की इस दौड़ में दूसरे से (ज्यादा भयानक और विशैले अस्त्र शस्त्र बना कर) आगे निकलने का प्रयत्न कर रहा है, और इस दौड़ की समाप्ति कहीं भी नहीं होगी ।

युद्ध के भयंकर परिणामों को कौन नहीं जानता ! पुराने वक्तों के युद्धों में तो फिर भी युद्ध युद्ध-क्षेत्र तक ही सीमित रहते थे । आधुनिक बमों के युद्ध में तो एक बम हज़ारों मीलों तक मार करेगा, जिस से अपनी जान तक को न सम्भाल सकने वाले बूढ़े, घरों के अन्दर बैठ कर रोटी पकाती हुई निर्दोष स्त्रियाँ, स्कूलों में बैठ कर पढ़ते हुए मासूम बच्चे, खेतों में लोगों के लिए अन्न बोने वाले किसान, फ़ैक्ट्रियों के अन्दर जनता के नंगे शरीरों को ढांपने के लिए कपड़ा बुनने वाले मज़दूर, जनता के हित के लिए नए २ आविष्कार की खोज में

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लगे हुए रिसर्च स्कालर्ज़ (Research scholars) और साइन्टिस्ट्स (Scientists), जनता की रक्षा में अपने शरीरों पर खेल जाने वाले नव युवक, लोगों को कुपथ से हटा कर सुपथ पर ले जाने वाले धर्म-उपदेष्टा और आध्यात्मिक नेता, देश को उन्नति के शिखर पर ले जाने में उत्सुक देश-भक्त, और, संसार भर के प्राणी-मात्र और भूत-मात्र में एकात्म-दर्शन की उच्यतम चोटी पर पहुँचे हुए महात्मा, योगी, और सन्यासी, सब आन की आन में विनाश को प्राप्त हो जएंगे। यदि कोई बच भी जाएगा, तो वह सदा के लिए Atomic Dust के कारण Complicated रोगों में ग्रस्त हो जाएगा और उसका जीना मरने से भी बदतर होगा। ज़मीन बन्जर हो जाएगी, और बीसियों सालों तक उपजाऊ नहीं हो सकेगी। पानी और हवा में विष भर जाएगा, जिस से कोई भी पशु पक्षी और जीव जन्तु जीवित नहीं रह सकेगा। ऐसा रोमांचकारी और भयंकर परिणाम इस युद्ध का होगा, और इस की साक्षी में हिरोशिमा (जापान) का हृदय-विदारिक नमूना हमारे सामने है।

कुम्हार यदि घड़ों को तोड़ फोड़ देता है, तो उस में इतना हर्ज नहीं, क्योंकि यदि वह बीसियों घड़ों को तोड़ डालता है, तो पचासों को बनाने में भी उस की सामर्थ्य है। परन्तु मनुष्य, जो एक छोटी से छोटी च्यूंटि को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं, उस को हरगिज़ यह अधिकार नहीं कि एक च्यूंटि तक का हनन करे, चेजायकि वह प्राणीमात्र के सरमौर मनुष्य का सर्वनाश कर दे।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह महान अत्याचार मनुष्य स्वार्थ में अन्धा हो कर करता है, चाहे वह स्वार्थ व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो, सामाजिक हो, अथवा देशिक हो। अपने देश के हित के लिए दूसरे देशों का विनाश वैसा ही दोष, पाप और अत्याचार है, जैसा एक व्यक्ति का अपने हित के लिए दूसरे व्यक्ति को मौत के घाट उतारना। जैसे वह व्यक्ति मृत्यु-दन्ड का भागी होता हैं, वैसे ही वह अपराधी देश भी दन्ड का भागी है।

युद्ध का अन्तिम परिणाम सन्धि ही है, जिस में विजेता और पराजित देश मिल बैठ कर परस्पर वार्तालाप से समझौता कर लेते हैं। कुछ एक छोड़ता है, कुछ दूसरा उस के लिए त्याग करता है। जो त्याग अन्त में जा कर करना है, उस को क्यों न युद्ध की उपरोक्त तबाहियों से पहिले ही कर लिया जाए! यह संसार एकरस कभी रहना नहीं, आज का विजेता व्यक्ति, परिवार, समाज, अथवा देश, कल को पद-दलित होगा और अवश्य होगा, इस में रत्ति भर भी संदेह नहीं, यह अटल सृष्टि-नियय है। फिर थोड़े दिनों के लिए मिली हुई शक्ति का दुरोपयोग करना और उस शक्ति को आसुरी शक्ति में परिणत कर के अपने से कम शक्ति वालों पर अत्याचार करना कहां की बुद्धि मत्ता है! राक्षसी शक्ति से किसी को कुछ दिनों के लिए तो दबाया जा सकता है, परन्तु वह दबा हुआ (व्यक्ति, परिवार, समाज अथवा देश) द्विगुणी शक्ति से उभर कर दबाने वाले का सत्यानाश कर देता है। हां, प्रेम की शक्ति से दबाए हुए (व्यक्ति, परिवार, समाज, अथवा देश) न केवल उभरते

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं, बल्कि स्वयं और ज़्यादा विनम्र हो कर ज़्यादा दब जाते हैं। दूसरों पर अत्याचार करने से पहिले यह विचार कर लेना आवश्यक है, कि "यदि यही वर्ताव मेरे साथ किया जाए, तो क्या मैं उसको अच्छा मानूंगा ?" यदि उस का उत्तर अपनी अन्तरात्मा से मिलता है, कि "नहीं," तो उस सूरत में मेरा कोई अधिकार नहीं कि वैसा वर्ताव मैं दूसरों के साथ करूं। यह "आत्मौपम्य दृष्टि" कहलाती है, और यही अहिंसा, सत्य और प्रेम की उत्पादक आध्यात्मिक दृष्टि है।

इस आध्यात्मिक दृष्टि को न समझ कर ही अत्याचार हिंसा और युद्ध के लिए गठबन्धियाँ होती हैं। हमारा भारत ही केवल मात्र ऐसा देश है, जो ऐसी औपनिषदिक आध्यात्मिक दृष्टि कोन वाली सभ्यता का पयाम्बर है। इसी लिए भारत किसी भी पक्ष का पक्षपाती न होकर संसार भर के देशों के साथ मित्रता और प्रेम रखने का अदर्श पेश कर रहा है। इस में संदेह नहीं कि ऐसा करने से हमारे देश को और देशवासियों को काफ़ी कुछ त्याग करना पड़ा है, पड़ रहा है और अभी करना पड़ेगा, परन्तु संसार में अशान्ति, हिंसा, और विषमता को मिटा कर उस की जगह शान्ति, अहिंसा, और समता को स्थापन करने के लिए यह अनिवार्य हैं। तभी तो "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" वेद के इस आदेश की पूर्ति होगी और तभी ही संसार स्वर्ग धाम बन कर रहने के काबिल बनेगा, वरना इस समय तो ईर्षा, द्वेष की अग्नि में जलता हुआ यह संसार मनुष्यों के रहने के काबिल

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थोड़ा है !

प्रश्न २८—

एकात्म दृष्टि या आत्मौपम्य दृष्टि भी तो एक असम्भव बात ही है। मैं ब्राह्मण, उच्च जाति, वेद का ज्ञाता और उपदेष्टा, एक नीच जाति के भंगी को अपना आप समझूं, जो मैंला साफ़ करता है, और जिस के साथ स्पर्श करने से भी छूत लगती है और नहाना पड़ता है ? गाए और कुत्ता भी कभी एक हो सकते हैं ?

उत्तर—

शारीरिक दृष्टि से ब्राह्मण का शरीर उसी लहू, हड्डी, मांस इत्यादि से बना हुआ है, जिन से भंगी का शरीर बना हुआ है। यदि भंगी के शरीर से स्पर्श करने पर छूत लगती है, तो उन्हीं अपवित्र चीज़ों से बने हुए ब्राह्मण-शरीर से छूत क्यों न हो ?

यदि भंगी के मैला साफ़ करने के कर्म के कारण वह अस्पृष्ट गिना जाए, तो यह तो और भी हास्यप्रद बात है। भला सोचिए, मैला करने वाला अच्छा है, या मैले को साफ़ करने वाला। हम मैला कर के वातावरण को दुर्गन्धित कर के बीमारियां फैलाने वाले तो अच्छे, परन्तु भंगी उस मैला को साफ़ करके बीमारियों को फैलने से रोकने वाला गर्दन-ज़दनी ! यह अजीव न्याय है ! और फिर, वह मैले को हाथ तो नहीं लगाता, हम तो अपने मैले को (शौच के समय) हाथ भी लगाते हैं, तो भी हम तो शुद्ध के शुद्ध

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और भंगी अछूत ! यदि यह कहा जाए कि वह दूसरों का मैला साफ़ करता है, इस लिए अछूत है, तो भी यह घृणा सर्वथा अनुचित है। घर में माता भी तो दूसरों (बच्चों) के मैले को साफ़ करती है, बीमारी में हम सब भी तो एक दूसरे का मैला साफ़ करते हैं, तो क्या हम माताओं को अछूत और घृणास्पद समझें ? हम स्वयं भी तो उसी Category में आते हैं।

वर्ण व्यवस्था का विधान बना कर हमारे पूर्वजों ने Division of Labour. कर दी थी, ताकि हर एक मनुष्य को हर एक काम अपने हाथों से न करना पड़े। यदि हर एक मनुष्य को अपने लिए खाने के लिए अन्न बोना पड़ता, पहनने के लिए कपड़े स्वयं बनाने पड़ते, रहुने के लिए मकान का स्वयं निर्माण करना पड़ता, हिंसक पशुओं, हिंसक मनुष्यों तथा शत्रुओं से अपनी और परिवार की रक्षा स्वयं करनी पड़ती, और अपना मैला भी स्वयं साफ़ करना पड़ता, तो ज़रा विचार कीजिए, क्या यह कभी सम्भव था ! इसी लिए काम को बांट दिया गया। यदि भंगी हमारी घृणा से तंग आकर, यह काम करना छोड़ दें, तो ज़रा अनुमान कीजिए, नगर, देश, या संसार की हालत क्या हो जाए ! भगवान कृष्ण तो गीता में विश्वास दिलाते हैं, कि हर एक मनुष्य का अपने २ काम को कुशलता पूर्वक करना ही भगवान की सेवा है, और उसी अपने कर्म से, भंगी भी उसी परम सिद्धि को प्राप्त करता हैं, जिस को एक ब्राह्मण।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जातियां तो हम ने ही बना रखी हैं और उन में विषमता का विष भर दिया है, वरना यदि वास्तव में परमात्मा को यह बात इच्छित होती, कि भंगी आदि (जिन को हम अछूत और नीच जातियां कहते हैं) घृणास्पद हैं, तो उन को वह वस्तुएं न देता, जो उन जातियों को दी हैं, जिन को हम उच्च जातियां कहते हैं। उस ने तो सूर्य, चन्द्र का प्रकाश उनको भी वैसे ही दे रखा है, जैसे हम को। उन के रहने के लिए वही पृथिवी है, जो हमारी है। उनके लिए हम तो कुओं का पानी भले ही बन्द कर दें, परन्तु उन अछूतों को भी कुआं खोद कर वैसे ही शुद्ध और निर्मल जल की प्राप्ति होती है, जैसे हम को। इसी प्रकार सांस लेने के लिए उन को भी वही हवा दे रखी है, जो हम को।

और यदि परमात्मा को मनुष्य मनुष्य में जाति-भेद के आधार पर विषमता अभिप्रेत होती, तो उन की शकल में कोई न कोई भेद अवश्य रख देता, जैसे शेर, रीछ, गीदड़, बन्दर आदि की आकृतियों में रख दिया है। परन्तु उस "सम अवस्थित ईश्वर" ने ऐसा नहीं किया। जब एक भंगी अपने कृत्य से फ़ारिग़ हो कर, नहा धो कर, धोती और खड़ावें पहन कर, बाहिर निकलता है। और राम नाम का जाप, माला लेकर, करता जाता है, तो क्या उसकी आकृति को देख कर किसी को उसके ब्राह्मण होने में संदेह हो सकता है, यदि वह उस को पहिले जानता न हो?

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शरीर, मन, बुद्धि से ऊपर उठ कर आध्यात्मिक दृष्टि से तो सर्वत्र एक ही आत्मा ओत प्रोत है। वह आत्मा नित्य ही शुद्ध, पवित्र और निर्लेप, निर्विकार है। वही आत्मा ब्राह्मण में है, वही आत्मा भंगी में है, लेशमात्र का भी भेद नहीं है। वह आत्मा ब्राह्मण शरीर में वेदाध्ययन से पवित्र नहीं होती, और भंगी के मैला साफ़ करने के कर्म से अपवित्र नहीं हो जाती।

देखिए, भगवान ने गीता में कितने स्पष्ट शब्दों में आदेश किया है :-

"विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि,
शुनि, चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः ॥"
(ग० ५-१८)

आपने शंका तो आज की है, कि "गाए और कुत्ता भी कभी एक हो सकते हैं?" और उस का समाधान भगवान ने पहिले ही कर रखा है। उन्हों ने "गवि" (गाए में) और शुनि (कुत्ते में) के शब्दों का प्रयोग मानो आप की ही शंका का समाधान करने के लिए किया है। इस से और ज़्यादा स्पष्ट शब्द क्या हो सकते हैं! कि "विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण में, गाए में, हाथी में, कुत्ते में, (केवल भंगी में ही नहीं, बल्कि कुत्ते को मार कर खाने वाले) चाण्डाल में भी समदर्शी होना ही वास्तिवक पण्डिताई (ब्राह्मणत्व) है।

प्रश्न २९- भगवान ने "समदर्शी" कहा है, "समवर्त्ती" थोड़ा कहा है?

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर– समवर्त्ति का प्रश्न इन अर्थों में तो नहीं है, कि उन के साथ रहना या उन के साथ खाना है (यद्यपि मनुष्यत्व के नाते उस में भी कोई पाप नहीं)। "समदर्शी" का अर्थ सांसारिक दृष्टि से उनके साथ सद् व्यवहार करना, उन से, उन के कर्म के कारण, घृणा न करना, और अपने को उच्च जाति कह कर अभिमान, और उन को नीच जाति कह कर उन के प्रति तिरस्कार, की भावना को मन में उत्पन्न न होने देना, और उन के सुख दुःख को अपने समान का सुख दुःख समझना है। पार्मार्थिक दृष्टि से उन में "**सम**" (ब्रह्मात्मा) के दर्शन करना। उन में भी उसी आत्मा का दर्शन करना, जो अपने में है, और अत्र, तत्र, सर्वत्र व्यापक है, अर्थात उन को भी अपना आप जानना ॥

प्रश्न ३०—श्रवण किए हुए प्रश्न (२० से २४ तक) के उत्तरों पर मनन करने से, इन में जो कुछ कहा गया है, बहुत कुछ ठीक मालूम होता है। सत्यार्थ प्रकाश से उद्धृत लेखों का मिलान सत्यार्थ प्रकाश से किया है, वहां बिल्कुल यही शब्द हैं, इन के उद्धृत करने में कोई खेंचा तानी नहीं की गई। अब एक बात और समझने के काबिल रह गई है, कि प्रश्न- २४ में जो यह कहा गया था, कि मनुष्य अज्ञान के कारण शरीर से बन्धा हुआ है, यह कैसे ?

उत्तर– बहुत उमदा ! किसी भी विषय को समझने के लिए उस पर मनन करना अति आवश्यक है,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रवण मात्र से समझ नहीं आ सकती। और आप ने घर जा कर जो सत्यार्थ प्रकाश से उद्घृत लेखों का मिलान कर लिया है, इस से आप के संशय की निवृति हो गई है। "संश्यात्मा" को किसी भी विषय में उस विषय का पूर्ण और स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता। इसी लिए तो गीता में इस संशय को ज्ञान की तलवार से छिन्न भिन्न करने का आदेश दिया गया है। थोड़े से मनन होने पर संशय की थोड़ी सी निवृति हो जाने के कारण आप कह रहे हैं कि "जो कुछ कहा गया है, **बहुत कुछ** ठीक मालूम होता है"। जब वाद-विवाद की दृष्टि को त्याग कर, "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने" की दृष्टि से, और ज़्यादा मनन किया जाएगा, तो "**सब कुछ ठीक है,**" ऐसा **निश्चय** हो जाएगा।

अज्ञान से बन्धन कैसे होता है, इस पर विचार करना है। प्रश्न १३ से लेकर १९ तक के उत्तरों में हम विचार कर चुके हैं, कि मनुष्य का वास्तविक स्वरूप (आत्मा) सच्चिदानन्द स्वरूप है। उस से भिन्न यदि प्रतीति होती है, तो इस लिए कि हम अपने आप को शरीर, मन, बुद्धि और अंहकार तक सीमित मानते हैं, जो अपूर्ण हैं। अर्थात पूर्ण होते हुए भी हम **अज्ञान** के कारण अपने आप को अपूर्ण समझते हैं, यैने अपने में कमी महसूस करते हैं। इस लिए उस कमी को पूरा करने की **इच्छा** करते हैं। इस इच्छा की पूर्ति के लिए **कर्म** करते हैं। (अच्छे या बुरे) कर्म के फल भोगने के लिए (अच्छे या बुरे) शरीर को धारण करना पड़ता है, अर्थात

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हम शरीर से **बन्ध** जाते हैं। इस प्रकार **अविद्या** (अज्ञान) से **काम** (इच्छा), काम से **कर्म**, और कर्म से शरीर के **बन्धन** की प्राप्ति के चक्कर या घुमरघेर में हम पड़े हुए हैं।

परन्तु यदि हमें अपने वास्तविक स्वरूप का **दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान** हो जाए. कि हम शरीर, मन, बुद्धि, या अहंकार नहीं, बल्कि सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, उस सच्चिदानन्द स्वरूप में कोई अपूर्णता (कमी) नहीं। अर्थात यदि "मैं पूर्ण हूँ" ऐसा ज्ञान हो जाए, तो जो इच्छा अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए होती थी, वह नहीं रहेगी, (जैसे पेट भरे हुए मनुष्य को खाने की इच्छा नही होती)। जैसे खाने की इच्छा न होने पर मनुष्य को रोटी पकाने की आवश्यकता नहीं रहती, इसी प्रकार कोई इच्छा न होने के कारण कर्म की आवश्यकता नहीं रहेगी। कर्म के अनुसार ही तो शरीर की प्राप्ति होती है, कर्म नहीं रहेगा, तो शरीर की प्राप्ति नहीं होगी। शरीर की प्राप्ति ही तो बन्धन हैं। उस की प्राप्ति न होना ही बन्धन से छुटकारा (अर्थात मुक्ति) पाना है।

जीवन-**मुक्त** के कर्म इच्छा-रहित होते हैं, इस लिए उस के कर्म, कर्म नहीं होते, जिस से उस को शरीर के बन्धन में आना पड़े (जैसे भुन्ना हुआ बीज, बीज नहीं होता, क्योंकि उस में उगने की शक्ति नहीं रहती)। शरीर छोड़ने के पश्चात उसे फिर शरीर के बन्धन में नहीं आना पड़ता। वह विदेह-मुक्ति को प्राप्त कर लेता है॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" ।
(श्वेता०उ० ४-१०)

"सर्वं ह्येतद् ब्रह्म" (माण्डूक्य-२)

दूसरा भाग

प्रकृति, माया, संसार

ज्ञान (ii)

(Theoretical aspect)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रश्न ३१—यह तो समझ लिया कि शरीर जड़ है और यह भी रोज़ाना का अनुभव है, कि स्वप्न के समय शरीर बिल्कुल अचेत होता है, फिर भी सवेरे उठ कर मैं कहता हूं कि "रात को बड़ा भयानक ख्वाब देखा," इस से यह परिणाम तो निकल सकता है, कि मैं शरीर नहीं हूं, इस से भिन्न ही हूं। परन्तु फिर भी मैं अपने आप को शरीर मानता हूँ, इस का कारण क्या है ? जो मेरा वास्तविक स्वरूप है, उस की प्रतीति क्यों नहीं होती ?

उत्तर—बहुत उच्च प्रश्न है। मनन का यह फल है, कि दृष्टि स्थूल शरीर से ऊपर उठ गई है। और यह अनुभव होने लगा है, कि हम शरीर नहीं हैं। हमारा वास्तविक स्वरूप इस से भिन्न है। उस स्वरूप की प्रतीति न होने में **माया** ही रूकावट बनी हुई है।

प्रश्न ३२—माया किसे कहते हैं, उस का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—यह भी काफ़ी सूक्ष्म और गहन विषय है, इस लिए इसको पूरी सावधानी से श्रवण करना आवश्यक है। जैसा कि प्रश्न ४ के उत्तर में विचार हुआ था, भौतिक विज्ञान की तरह वेदान्त की अपनी प्रक्रिया (Techniques) हैं। उन को उन्हीं के अनुसार समझना होगा, अपनी या किसी और भाषा की Technique में नहीं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस सम्बन्ध में एक और चेतावनी भी आवश्यक है। मान लो, मैंने देहली में बिड़ला मन्दिर नहीं देखा, मेरा एक मित्र उस के नज़दीक रहता है। वह मुझे (राजेन्द्र नगर से) वहां जाने का रास्ता बता देता है, कि "यहां से शंकर रोड पर जाओ, वहां से बाएं हाथ को मुड़ जाओ। आगे जाकर पहाड़ी आएगी और उस से आगे गोल चक्कर आएगा, जहां से चार सड़कें फटती हैं। दाईं ओर नहीं जाना। बाईं ओर की पहली सड़क को छोड़ देना, दूसरी सड़क पर चढ़ जाना। वहां सड़क के दोनों ओर दरख़तों का जंगल आएगा, जंगल से घबड़ाना नहीं, आगे चलते जाना। आगे जाकर यह सड़क ख़तम हो कर दूसरी सड़क (रीडिंग रोड) के साथ मिल जाएगी। इस सड़क पर भी बाईं ओर मुड़ जाना। इस सड़क के बाईं ओर एक बंगाली मन्दिर (काली बाड़ी) आएगा, उसके आगे बिजली घर आएगा, उसके बाद बोद्ध विहार का मन्दिर आएगा, उस को भी छोड़ कर, उस के साथ वाला मन्दिर "बिड़ला मन्दिर" होगा। उस की निशानि यह है कि बाहिर से घंटा घर दिखाई देगा।

यदि मैं ने उस मित्र के वचनों पर संशय किया, कि "पता नहीं उस ने स्वयं उस बिड़ला मन्दिर को देखा हुआ भी है या नहीं। पता नही, मुझे कहीं धोका ही न देता हो" इस तरह उस पर विश्वास न करके यदि मैं नहीं जाता, तों इस में मेरे मित्र की, उस के बताए हुए रास्ते की, या बिड़ला मन्दिर की तो कोई हानि नहीं। हानि होगी तो मेरी अपनी। कि अपनी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यात्रा के ध्येय को पूरा नहीं कर पाऊंगा । परन्तु यदि अपने उस विश्वस्त मित्र पर विश्वास करके मैं चल पड़ता हूं, तो मन्दिर अवश्य पहुँच जाऊंगा। दी हुई निशानियों के भूल जाने के कारण, यदि रास्ता में कुछ भूल हो भी जाए, तो वहां से पूछ ताछ हो सकती है। एक बार विश्वास कर के चल खड़ा हूं, तो पहुँचने में संदेह नहीं।

इसी प्रकार अपने स्वरूप के ज्ञान रूप ध्येय पर पहुँचने के लिए यदि उपनिषदों के ऋषियों के वचनों पर विश्वास कर के हम चल पड़े. तो ध्येय प्राप्ति होगी, और अवश्य होगी। उन ऋषियों ने हम पर अकारण ही कृपा कर के उस गुप्त खज़ाने तक पहुँचने का रास्ता, और उस अनुपम सम्पत्ति के प्राप्त करने की विधि, हमारे ही लिए उपनिषदों (वेदान्तों) में बतला दी है, ताकि हम परम आनन्द को प्राप्त कर लें। अपने हृदय पर पत्थर रख कर (अपनी अविश्वसिनि वृति को रोक कर) उन के वचनों पर पूर्ण विश्वास कर के, यदि हम चल पड़े तो, उस परम सम्पति के पूर्ण तौर पर हम मालिक हो जाएंगे, इस में कोई संदेह हर गिज़, हर गिज़ नहीं। ऋषि लोग हमें धोका देने के लिए नही कह रहे। और यदि वह धोका देते भी हैं, तो इस धोका के खा लेने से हम घाटे में नही रहेंगे । संसार में भी तो हम हर रोज़ दूसरों से धोका खा ही रहे हैं। इन ऋषियों से एक धोका और भी सही ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

माया, "माया-के-अधिपति महेश्वर" की शक्ति है। इसी का दूसरा नाम **प्रकृति** है। इस के और भी बहुत से नाम हैं, जिन का उल्लेख आहिस्ता २ ही होगा। यह माया एक बड़ी विचित्र और आश्चर्यजनक वस्तु है। अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न होने देने में यह माया ही एक मात्र रूकावट और पर्दा है। यदि यह ज्ञान न होने देने में रूकावट मात्र ही होती, तो भी ख़ैर थी। इस ने तो सच्चिदानन्द को छिपा कर उस की जगह, उस से सर्वथा विपरीत गुणों वाले असत्य संसार को हमारे सामने लाकर खड़ा कर दिया है। Ice factory के उदाहरण से यह बात हम बड़ी सुगमता से समझ सकेंगे।

पानी के गुण निम्न लिखित प्रकार से हैं :-

(१) पानी तरल है।
(२) इस का रंग नीला सा है।
(३) यह हाथ या कपड़े में से नीचे बह जाता है।
(४) यह मामूली ठन्डा होता है।
(५) यह प्यास को बुझाता है।
(६) यह आँखों पर छिड़कने से आंखों को दुःखी नहीं करता।

परन्तु इसी पानी को आईस फ़ैक्ट्री की माया (शक्ति) पानी की बजाए बर्फ़ को हमारे सामने लाकर खड़ा कर देती है, और यह बर्फ़ पानी से सर्वथा विपरीत गुणों वाली है :-

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१) बर्फ़ ठोस है।
(२) इस का रंग सफ़ेद है।
(३) यह हाथों और कपड़ों में पकड़ी और बन्धी जा सकती है।
(४) यह बहुत ठन्डी होती है।
(५) यह प्यास को केवल बुझाती ही नहीं, बल्कि ज़्यादा तेज़ करती है।
(६) यह आंखों पर मारने से आँखों को फोड़ डालेगी।

इसी प्रकार वह माया हमारे वास्तविक सत्य स्वरूप (सच्चिदानन्द) को, जिस के गुण निम्न प्रकार से हैं :-

(१) हमारा सत्य वास्तविक स्वरूप सूक्ष्म है।
(२) यह चेतन है।
(३) यह नित्य है।
(४) यह आनन्द स्वरूप है।
(५) यह सब कारणों का कारण है।
(६) यह व्यापक है।
(७) यह पवित्र है।

इस हमारे सत्य स्वरूप को ढक कर, इस की जगह इस के सर्वथा विपरीत गुणों वाले संसार को खड़ा कर देती है। उस संसार के गुण निम्न प्रकार हैं :-

(१) संसार स्थूल है।
(२) वह जड़ है।
(३) वह अनित्य है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(४) वह दुःख-रूप है।
(५) वह कार्य है।
(६) वह एक-देशी और व्याप्य है।
(७) वह अपवित्र है।

कितना आश्चर्य है, कि जो वस्तु सर्व काल और सर्व देश में, अणु अणु और परमाणु परमाणु में व्यापक है, उसको तो इस माया ने हमारी नज़रों से छिपा रखा है, परन्तु जो वास्तव में है ही नहीं, उस संसार को हमारे आगे ला खड़ा किया है।

प्रश्न ३३—संसार है कैसे नहीं ?

उत्तर—जैसे पानी में बर्फ़ नहीं। बर्फ़ देखने मात्र ही तो है।

प्रश्न ३४—तो क्या मतलब ? क्या संसार वास्तव में है नहीं ? यह संसार साक्षात प्रतीत हो रहा है। आंखों से हम दरिया, वृक्ष, मकान, पशु पक्षी, इत्यादि २ लाखों करोड़ों चीज़ें प्रत्यक्ष देखते हैं। कानों से अच्छे या बुरे शब्दों को प्रत्यक्ष तौर पर सुनते हैं। इसी प्रकार दसों इन्द्रियों और मन से सांसारिक पदार्थों और भावों का साक्षात तौर पर अनुभव करते हैं। भला, ऐसा संसार क्या कभी स्वप्न की तरह असत्य हो सकता है ?

उत्तर—नहीं, इस संसार को असत्य कहना ही असत्य है। भला जिस चीज़ का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है, उस को प्रमाण की आवश्ककता ही क्या ? आकाश में

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मध्यान्ह का सूर्य चढ़ा हुआ हो, कोई हज़ार बार कहता रहे, कि अब रात्रि है, सूर्य को प्रत्यक्ष देखने वाला क्या कभी उस पर विश्वास कर सकता है ? और फिर कहा यह गया है, कि "स्वप्न की तरह असत्य है," गोया स्वप्न को भी असत्य कह दिया गया। स्वप्न असत्य थोड़ा है ! देखिए, एक मनुष्य ने लाटरी में पांच रुपये दिए हुए हैं। रात को उस को स्वप्न में चिट्ठि आती है कि "तुम्हारे नाम पचास हज़ार की लाटरी निकली है, चैक भेजा जाता है, ख़ज़ाना से रुपया वसूल कर लो"। उस को बड़ी प्रसन्नता होती है। चैक जेब में डालकर ख़ज़ाना की ओर पैदल चल पड़ता है, (क्योंकि अतीव निर्धन होने के कारण टांगा का किराया अदा करने के लिए उस के पास पैसे नहीं हैं) मौसम गर्मी का है। सनीचर का दिन है, ख़ज़ाना एक बजे बन्द हो जाता है। १२ बजे चिट्ठी मिली है। धूप कड़ाके की पड़ रही है। रास्ता में सख़्त प्यास लगती है, प्याऊ पर पानी पीता है। 12½ बजे ख़ज़ाने पहुँच जाता है। हैड-क्लर्क और Treasury officer इत्यादि के हस्ताक्षर इत्यादि की Formalities को पूरा कर के ख़ज़ान्ची के पास जाता है। वह उस को पचास हज़ार के नोट गिन कर देता है। उन में से कुछ (ख़राब होने के कारण) यह उस से बदलवाता है। अब वह निर्धन नहीं रहा। पैदल आने की बजाए वह एक टैक्सी पर, गद गद मन से, घर वापस पहुँचता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अब बतलाए, स्वप्न की इस सारी क्रिया में कौन सी बात असत्य है? यदि असत्य होती, तो पोस्टमैन जब चैक लाया था, तो वहीं उस को कह देता कि "भाई, यह तो स्वप्न का मिथ्या चैक है, मैं नहीं लेता।" ख़ज़ाने जाते हुए रास्ता में प्याऊ से पानी पिया। यदि असत्य होता, तो पानी पी कर उस की प्यास क्यों बुझती? फिर ख़ज़ान्ची से फटे पुराने नोट तब्दील कराने की क्या ज़रूरत थी, यदि वह थे ही झूठे नोट? वह मनुष्य पोस्टमैन को, चैक को, प्याऊ को, Treasury officer, Head clerk, ख़ज़ान्ची, रुपये (अच्छे और फटे पुराने नोट), टैक्सी इत्यादि २ को प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखता है, उन की बातों को कानों से सुनता है, उन को अपनी ज़बान से उत्तर देता है। गोया दसों इन्द्रियों और मन इत्यादि से स्वप्न के पदार्थों और भावों इत्यादि का साक्षात तौर पर अनुभव करता है, तो फिर स्वप्न असत्य कैसे हुआ?

प्रश्न ३५—तो क्या स्वप्न सत्य है? यदि सत्य होता, तो वह मनुष्य वैसे का वैसा निर्धन क्यों रहता? कमरे के अन्दर सर्दी से ठिठुर कर मुंह सिर भी तो रज़ाई से ढक रखा है, और अनुभव करता है कड़ाके की गर्मी! समय रात का है, और उस को दीखता है मध्यान्ह का सूर्य! पानी पीने पर प्यास बुझ गई थी, परन्तु होंट प्यास से सूख रहे हैं! स्वप्न तो वास्तविक बातों से बिल्कुल विपरीत है। उस को हम सत्य कैसे कह सकते हैं? इस के असत्य होने में तो कोई संदेह ही नहीं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर—स्वप्न के असत्य होने में संदेह जो नहीं है, तो किस को नहीं ? क्या उस मनुष्य को जो स्वप्न देख रहा है ?

प्रश्न ३६—परन्तु जागने पर तो उस को भी स्वप्न की सब चीज़ें और भाव असत्य प्रतीत होते ही हैं, बल्कि रात के स्वप्न की सारी घटना को याद कर के वह आश्चर्य-चकित होता है, कि इतना मूर्ख मैं क्यों बना रहा। स्वप्न की असत्य चीज़ों को सत्य मानता कैसे रहा !

उत्तर—ठीक, बिल्कुल ठीक। आप की बातों का विश्लेषण करने से पता चलता है, कि आप ने भिन्न २ दो अवस्थाएं स्वीकार की हैं। एक **स्वप्न अवस्था** और दूसरी **जाग्रत अवस्था**। और आप ने यह भी स्वीकार किया है, कि स्वप्न में इन्द्रियों और मन इत्यादि से प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले पदार्थ और भाव स्वप्न में सत्य प्रतीत होने पर भी जाग्रत में असत्य हैं। साथ ही आप ने जाग्रत अवस्था को स्वप्न अवस्था की अपेक्षा वास्तविक माना है, इसी लिए तो आप ने स्वप्न के पदार्थों को झूठा और जागृत के पदार्थों को सत्य कहा है। आइए, अब इसी आधार पर संसार और सांसारिक पदार्थों का विचार करें :-

उपरोक्त स्वप्न अवस्था को **"प्रातिभासिक सत्ता"** कहते हैं। जाग्रत अवस्था का नाम **'व्यवहारिक सत्ता"** है और इन के अतिरिक्त एक तीसरी सत्ता है, जो **"पार्मार्थिक सत्ता"** के नाम से कही जाती है। जिस प्रकार जाग्रत

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की व्यवहारिक सत्ता में स्वप्न की प्रातिभासिक सत्ता मिथ्या और असत्य तो होती है, परन्तु स्वप्न देखने वाले को स्वप्न में वह असत्य प्रतीत न होकर बिल्कुल वास्तविक ही प्रतीत होती है, परन्तु जागने पर (व्यवहारिक सत्ता में) उसी प्रातिभासिक सत्ता को (स्वप्न के पदार्थों को) वही स्वप्न देखने वाला स्वयं निश्चय से असत्य कहता है, ठीक इसी प्रकार पार्मार्थिक सत्ता में जागने पर (अर्थात परमात्मा का ज्ञान हो जाने पर) व्यवहारिक सत्ता, यैने जाग्रत के पदार्थ वैसे ही असत्य, निश्चय होते हैं, जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत में। बल्कि व्यवहारिक सत्ता की घटनाओं को याद कर के वह आश्चर्य-चकित होता है, कि "मैं इतना मूर्ख क्यों बना रहा! असत्य व्यवहारिक सत्ता को सत्य मानता कैसे रहा!"

प्रश्न ३७—इतना कुछ कहने और सुनने के पश्चात भी प्रश्न तो वही बना ही रहा, कि जिन (दरिया, पहाड़, मकान इत्यादि) को हम प्रत्यक्ष देखते हैं, वह हैं ही नहीं, यह कैसे माना जा सकता है?

उत्तर—इस के लिए पहिले 'सत्य' और 'असत्य' शब्दों के लक्षण (Definition) समझ लेना आवश्यक है। **'सत्य** वस्तु' का लक्षण यह है, कि जो वस्तु (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) तीनों अवस्थाओं में, और (भूत, भविष्यत, वर्तमान) तीनों कालों में, एक जैसी रहे, उस में कोई परिवर्तन न हो।

इस के विपरीत **असत्य** वस्तु, वह है, जो किसी काल में रहे, और किसी काल में न रहे। इस को ज़्यादा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्पष्ट समझने के लिए सोने का उदाहरण लेते हैं। सोने से सुनार ने नैकलेस, और कड़े आदि ज़ेवर बना दिए। वह ज़ेवर कुछ समय इस्तमाल करने के बाद टूट गए। सुनार ने उन को गला दिया, जिस से वह फिर सोना में परिवर्तित हो गए। वह ज़ेवर असत्य हैं, क्योंकि सुनार के उन को बनाने के काल से पहिले वह नहीं थे, और टूट कर पिघलाने के बाद वह नहीं रहे। परन्तु सोना (आपेक्षिक) सत्य है, क्योंकि ज़ेवरों के बनाने के काल से पहिले भी यह था। ज़ेवर बन गए, तब भी यह ज़ेवरों के रूप में मौजूद था। और अब ज़ेवरों के गलाए जाने के बाद भी मौजूद है। सोना (ज़ेवरों की अपेक्षा) तोनों कालों में मौजूद रहता है, इस लिए सोना (ज़ेवरों की अपेक्षा) सत्य है।

अब, इसी आधार पर संसार और उस के पदार्थों का विचार करने से प्रतीत होगा, कि जाग्रत अवस्था में हम दरिया, पहाड़, मकान आदि को देखते हैं। स्वप्न में भी इन पदार्थों का मानसिक भान हो सकता हैं। परन्तु सुषुप्ति (और समाधि) की अवस्था में तो किसी भी पदार्थ का भान नहीं होता। (यदि होता है, तो वह सुषुप्ति या समाधि नहीं)। गोया, संसार और उस के पदार्थ किसी काल में होते हैं और दूसरे काल में नहीं होते, इस लिए (उपरोक्त लक्षण के अनुसार) यह **"संसार मिथ्या है।"** **"मिथ्या"** या **"असत्य"** का अर्थ अपने मन पर दृढ़ता पूर्वक अंकित कर लेना है। इस का अर्थ यह नहीं, कि ईश्वर की बनाई हुई और प्रत्यक्ष दीखने वाली सृष्टि है ही नहीं, बल्कि **मिथ्या (असत्य)** का

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्थ यह है, कि संसार और उस के पदार्थ Transitary (अनित्य) हैं। एक समय में दरिया, पहाड़, मकान नहीं थे, और एक समय ऐसा काएगा, जब कि यह नहीं रहेंगे। इस दृष्टि से यह प्रत्यक्ष दीखने वाले दरिया, पहाड़, मकान असत्य और मिथ्या है। इन पदार्थों अर्थात इस दीखने वाले जगत की उत्पत्ति पंचमहाभूतों से हुई है। स्वयं पंचमहाभूत असत्य हैं, क्योंकि वह भी अपनी उत्पत्ति काल से पहिले नहीं थे, और प्रलयकाल में नहीं रहेंगे। जब कारण ही असत्य है, तो उस का कार्य, यह जगत, असत्य के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है! और यदि ज़रा और ज़्यादा सूक्ष्म दृष्टि से, और ज़रा और ज़्यादा गहरे पेठ कर देखें, तो जगत प्रत्यक्ष तौर पर असत्य ही प्रतीत होगा। इस के लिए हमें इस बात पर विचार करना होगा कि किसी पदार्थ का ज्ञान हम को होता कैसे है।

प्रश्न ३८—कता कलाम मुआफ़। विषय चूंकि बहुत गूढ़, है और जो कुछ रोज़मर्रा का अनुभव है, उस से कुछ विचित्र ही यह सिद्धान्त प्रतीत होता हैं, इस लिए ज़्यादा सूक्ष्म दृष्टि से इस पर विचार करने से पहिले, इस शंका का समाधान हो जाना चाहिए, कि क्या व्यवहारिक सत्ता में कोई ऐसा पदार्थ है जो देखने में तो सत्य प्रतीत हो, वास्तव में हो असत्य ?

उत्तर—हां, ऐसे बीसियों उदाहरण हैं, उन में से कुछ एक का दिग्-दर्शन कर लीजिए :-

(१) सूर्य हमारी पृथिवी से एक लाख गुना बड़ा है। हमेशा छोटी चीज़ ही बड़ी के गिर्द घूम सकती है,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बड़ी चीज़ छोटी के नहीं। पृथिवी ही सूर्य के गिर्द घूमती है, परन्तु प्रतीत क्या होता हैं, कि सूर्य पूर्व से निकल कर पश्चिम में अस्त हो जाता है। देखने में तो सूर्य का यह घूमना सत्य प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में है असत्य। सूर्य अपनी जगह से कभी एक इन्च भी तो नहीं हिला।

(२) मशाल (लकड़ी के सिरे पर कपड़ा बांध कर, उस पर तेल डाल कर उस को जलाने से मशाल बनती है) उस मशाल को चक्कर में घुमाने से आग का एक गोल दायरा प्रतीत होता है। आग का यह दायरा देखने में तो सत्य प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में है असत्य। आग लकड़ी के केवल एक सिरे पर ही लगी हुई है।

(३) हाथियों का एक गल्ला, दरिया के किनारे पर घास के मैदान में चर रहा है। पास के पहाड़ के ऊपर से देखने में ऐसा प्रतीत होता है, कि बकरियों का एक रेवड़ चर रहा है। बकरियों का यह रेवड़ पहाड़ पर खड़े हुए आदमी को सत्य प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में है असत्य। पूरे डील डौल के हाथी हैं।

(४) *पहाड़पुर से °डेरा की ओर मोटर में आते हुए •मंधरा के नज़दीक बाईं ओर

नोट– *उत्तर पश्चमी सीमाप्रान्त (पाकिस्तान) के ज़िला डेरा इस्माईल खां का एक गाऊं, जहां पर लेखक की ज़मीनें थीं। डेरा से २० मील दूर °डेरा इस्माइल खां, लेखक की जन्म भूमि। •एक छोटा सा गाऊं, डेरा से ५ मील दूर।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देखने पर पानी का दरिया दीखता है, और उस दरिया के पानी में वृक्षों की छाया (प्रतिबिम्ब) भी प्रत्यक्ष तौर पर नज़र आती है। यह दरिया देखने में तो सत्य प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में है असत्य। वह केवल रेत का ही मैदान है, और उस में मृग-तृष्णा-जल की प्रतीति होती है।

(५) सायं काल के समय सैर पर जाते हुए रास्ते में एक मित्र ने कहा, "सांप"। एकदम कूद कर वहां से एक ओर हो गया, हिलता हुआ छजली वाला सांप दिखाई दिया। डर के मारे दिल दहल गया। बैटरी पास थी, तुरन्त रोशनी की। "ओहो, यह तो केवल रस्सी ही थी, जिस से इतना भय हो रहा था"। सांप देखने में तो सत्य प्रतीत होता था, और उस की छजली तक भी दिखाई देने लगी, परन्तु वास्तव में था असत्य। केवल रस्सी ही थी।

इन उदाहरणों से यह बात पूरी तरह समझ में आ गई होगी, कि जो पदार्थ या क्रियाएं जैसी प्रतीत होती हैं, ज़रूरी नहीं, कि वास्तव में भी वैसी ही हों। प्रतीति और वास्तविकता में भिन्नता हो सकती है।

अब, पदार्थों का ज्ञान हम को किस प्रकार होता है, इस पर विचार करना है :-

किसी भी पदार्थ के ज्ञान के लिए "**प्रमाण**" और "**प्रमेय**" का योग होना आवश्यक है, वरना उस वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता।

प्रमाण का अर्थ है, जीव-सृष्टि, मन, मनोमयी सृष्टि।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रमेय का अर्थ है, ईश सृष्टि, विषय, सांसारिक पदार्थ । प्रमेय के मौजूद होते हुए भी, जब तक प्रमाण उस के साथ मिलेगा नहीं, उस का ज्ञान नहीं हो सकता । ससार में लाखों करोड़ों चीज़ें हैं, क्या एक समय में उन में से हर एक का ज्ञान हम को होता है ? नहीं, ज्ञान केवल उस वस्तु का ही होगा, जिस वस्तु पर मन जाएगा । दूसरे शब्दों मे ईश सृष्टि के (प्रमेय के) होते हुए भी जब तक उस के साथ जीव सृष्टि (प्रमाण) नहीं मिलेगा उसका ज्ञान नहीं होगा । केवल स्वप्न, स्मृति, भ्रान्ति और मनोराज्य में ही (जब कि बाह्य विषय का अभाव होता है) पदार्थ मनोमय नहीं होता, बल्कि जाग्रत में बाह्य वस्तु के रहते हुए भी, जब तक मनोमय नहीं होगा, उस वस्तु का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है ।

इस समय ईश सृष्टि की इस पुस्तक के साथ मेरी जीव सृष्टि मिली हुई है, इसी लिए मुझे इस पुस्तक का ज्ञान हुआ । अर्थात इस समय यह पुस्तक, यह विचार, और कलम-दवात और इन विचारों को इस पुस्तक में लिखना-यही मेरी सृष्टि है । इस समय मेरी सृष्टि घर या स्कूल नहीं । *ओमप्रकाश अथवा ○संतोष (जो शायद इस समय घर पर हों) के लिए भले ही घर उन की सृष्टि हो, मेरी नहीं । ●करोल-बाग़ स्कूल में इस समय जो लड़के पढ़ रहे होंगे,

---

नोट :- *, ○ लेखक का लड़का और लड़की ।
●गवर्नमैन्ट हाई स्कूल, करोल बाग़ देहली, जहां लेखक १९५२ से १९५७ तक दूसरी शिफ्ट में मास्टर रहा ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथवा जो मास्टर इस समय वहाँ पढ़ा रहे होंगे, उन की सृष्टि स्कूल भले हो, मेरी नहीं। और दूसरे समय में, घर जाने पर, अथवा स्कूल जाने पर, घर और स्कूल भले ही मेरी, सृष्टि बन जाए, इस समय नहीं। 'दृष्टिरेव सृष्टि" दृष्टि ही सृष्टि है। अर्थात जिस समय, जिस पदार्थ पर किसी मनुष्य की दृष्टि है, उस समय वही पदार्थ ही उस के लिए सृष्टि है, उस के लिए वही संसार है, वही जगत है। उस वस्तु से भिन्न शेष संसार भले ही पूर्ण रूप से मौजूद है, परन्तु उस के लिए उस समय वह है ही नहीं।

मोटर कार के साथ एक बच्चे की साईकल टकराने से, बच्चा यद्यपि बच तो गया, परन्तु उस के घुटने की हड्डी टूट गई, जिस से बच्चा सारा दिन बेचैन रहा। रात के समय वह दर्द से चीख रहा है। माता उस के बिस्तर के पास बठी सेक कर रही है। बच्चे के दुःख के कारण बड़ी दुःखी हो रही है। रोटी का एक ग्रास भी खाना उसको अच्छा नहीं लगता। बच्चे का पिता कहीं बाहिर किसी सम्बन्धी के विवाह पर गया हुआ है। बरात में उस समय वह खुशियां मना रहा है और मिठाइयों के मज्ज़े लूट रहा है। ईश सृष्टि में तो वह बच्चा माता पिता दोनों को अतीव ही प्रिय है। माता की जीव सृष्टि बच्चे की ईश सृष्टि के साथ मिलने से दुःखी हो रही है। परन्तु पिता की जीव सृष्टि बच्चे की ईश सृष्टि के साथ नहीं मिली, इस लिए उस को न केवल कोई दुःख ही नहीं, बल्कि अन्यत्र सुख में लगे

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होने से ख़ुशियां मना रहा है। अभी और देखिए, उस दुःख से चीख़ते हुए बच्चे को स्वप्न आता है, वह स्वप्न में फ़ुटबाल का (Tournament) में मैच खेलता है। सब से तेज़ दौड़ कर दो तीन गोल से मैच जीत लेता है। सारी टीम के खिलाड़ी उस को सिर आँखों पर उठाते हैं। बैंड मंगाया जाता है, लड़के के गले में हार डाल कर उसका जलूस निकाला जाता है। लड़का मारे ख़ुशी के फूले नहीं समाता। परन्तु इधर माता उस को सेक वैसे ही कर रही है, उसका मन बड़ा दुःखी है, कि हड्डी टूट गई है, ज़ख़म में पीप पड़ रही है, कहीं टांग कटानी ही न पड़ जाए॥ ज़रा देखिए, जिस बच्चे के दुःख में जीव सृष्टि होने के कारण, माता दुःखी हो रही है, उसी वच्चे को (उस की जीव सृष्टि के क्लेश के साथ न होने से) दुःख नहीं, (हालांकि दर्द वैसा ही है) बल्कि अन्यत्र सुख में जीव सृष्टि होने से वह सुख का अनुभव कर रहा है। और स्वप्न से जागने पर, उस की जीव सृष्टि के उस दर्द के साथ फिर मिलने से, वह वैसा ही फिर कराहने लगता है।

उपरोक्त घटना से प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया कि ईश सृष्टि (सांसारिक पदार्थ) मनुष्य को सुख दुःख का कारण नहीं होते, जब तक उसकी जीव सृष्टि उस के साथ नहीं मिलती। अर्थात संसार (सुख दुःख) वास्तव में न सत्य है और न ही असत्य है, जीव सृष्टि (मन) के उस के साथ मिलने से ही किसी के लिए सत्य और किसी दूसरे के लिए असत्य हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस सम्बन्ध में श्री विद्यार्ण्य स्वामी ने मणि का एक दृष्टान्त दिया है, कि ईश सृष्टि की मणि तो एक ही है एक मनुष्य उस की प्राप्ति के लिए भर्सक प्रयत्न करता है, परन्तु उस को मिलती नहीं, जिस से उस को दुःख होता हैं। दूसरे मनुष्य को वह मणि मिल जाती है, उसको उसी मणी से सुख होता है। और एक विरक्त पुरूष को, (जिस ने उस को प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं किया), उस मणि से न सुख है, न दुःख है। अर्थात संसार (ईश सृष्टि, मणि) एक को दुःख का कारण, दूसरे के लिए सुख का कारण और तीसरे के लिए न ही दुःख का कारण है, न सुख का॥ ज़रा और विचित्र बात देखिये, कि यह संसार न केवल भिन्न भिन्न मनुष्यों के दृष्टि कोण से सुख रूप या दुःख रूप होता है, बल्कि एक ही मनुष्य को भिन्न २ समय में वही ईश सृष्टि भिन्न २ प्रतीत होती है :- एक व्यापारी को दूर देश में व्यापार के लिए जाना पड़ा। उस के जाने के चार पांच महीने पहिले उस का पुत्र उत्पन्न हुआ। उस व्यापारी को परदेश में दस साल रहना पड़ गया। पुत्र के पास पिता के पत्र आया जाया करते थे, परन्तु बहुत महीनों से कोई पत्र न आया। मन में पिता को मिलने की बड़ी उत्कन्ठा पैदा हुई। इस लिए वह रवाना हो कर, दो दिन निरन्तर सफ़र करने के पश्चात, रात को एक सराए में ठहर गया। सर्दी सख्त होने के कारण, और कपड़े और बिस्तर पूरा न होने के कारण, उस को सर्दी से बुख़ार हो गया। एक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दो दिन वहां रह कर फिर आगे जाने का निश्चय किया ॥

उधर पिता को भी दस साल के बाद अपने पुत्र को मिलने की तीव्र इच्छा हुई। वह भी रवाना हो कर इत्फ़ाक से उसी ही सराए में रात को १२ बजे आकर ठहरा, क्योंकि उस ने ट्रेन तब्दील करनी थी और वह ट्रेन सवेरे ७ बजे जानी थी। सराए में और कमरा ख़ाली न होने के कारण उस को उसी कमरा में जगह दी गई, जहां उस का पुत्र ठहरा हुआ था। परन्तु न उस को यह मालूम था कि यह मेरा पुत्र है, और न पुत्र ही को पता था कि यह मेरा पिता है, जिस को मिलने के लिए मैं जा रहा हूं। लड़का निमोनिया हो जाने के कारण खांसी और दर्द से करहा रहा था। व्योपारी को उस के चिल्लाने से नीद नहीं आती थी। उस ने सराए के कर्मचारी को कुछ दे दिला कर लड़के को कमरे से बाहिर बांडे में निकलवा दिया। प्रातः ६ बजे सो कर उठने के बाद वह सेठ शौचादि से फ़ारिग़ हो कर जब लड़के के बिस्तर के पास से गुज़रा, तो उस को चिल्लाते हुए सुन कर, झुंझला कर कहने लगा, "नाबकार, अभी तक ज़िन्दा है? सारी रात नींद नहीं करने दी"। लड़के ने कहा "भाई साहिब, आप क्यों नाराज़ हो रहे हैं? मैं भी तो एक सेठ का लड़का हूं, पिता जी को मिलने के लिए ही बम्बई जाते हुए सफ़र में सर्दी के कारण, निमोनिया हो गया है"। सेठ बम्बई से हीं आ रहा था, इस लिए लड़के की बाबत मज़ीद हाल जानने की इच्छा हुई, और उस ने उस से पूरा पता

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूछा। लड़के के अपना पूरा हाल बताने पर उस को मालूम हुआ कि यह तो उसका अपना ही पुत्र था। उसी समय उस सराए के उसी कर्मचारी को (जिस से उस ने लड़के को कमरे से बाहिर निकलवाया था) डाक्टर को बुलाने के लिए भेजा, और जब तक लड़के को आराम न आया, तब तक उस के दुःख में दुःखी हुआ २ रात दिन उसकी सेवा में लगा रहा, और आराम आने पर उसे घर ले गया।

ज़रा देखिये, रात के १२ बजे (जब वह सेठ सराए में आया) और ६ बजे (जब कि लड़के के अपने पुत्र होने का पता चला) के दर्म्यानी काल में वह लड़का तो बदल नहीं गया, अर्थात ईश सृष्टि में तो कोई भी भेद नहीं हुआ। पिता के लड़के के प्रति घृणा और फिर पैत्रिक-स्नेह रूप संसार में भेद का कारण उस सेठ की जीव सृष्टि (मन) ही है। इस जीव सृष्टि के कारण एक काल में घृणा रूप संसार सत्य था, दूसरे काल में वही संसार (घृणा) उसी के लिए ही असत्य हो गया।

प्रश्न ३९—तो अब अन्तिम निश्चय क्या हुआ, यह संसार सत्य है या असत्य ? यदि इस को असत्य कहा जाए, तो क्या इस का प्रभाव लोगों पर बुरा नहीं पड़ेगा ? वह इस असत्य संसार में क्यों रहेंगे ? संसार को छोड़ कर जंगलों में न चले जाएंगे ? फिर संसार चलेगा कैसे ?

उत्तर—निसंदेह विषय के गहन होने के कारण ऐसी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शंका का अन्त तक रहना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। इस पर मनन, विचार और अभ्यास करने से ही इस शंका की पूर्ण रूप से निवृति हो सकती है। उपसंहार रूप से इतना कहना पर्याप्त है, कि संसार को न सत्य ही कह सकते हैं, न असत्य ही। इसी लिए तो वेदान्तों में इस को "अनिर्वचनीय" कहा गया है। वह स्वप्न वाला दृष्टान्त सामने रखिए। स्वप्न को असत्य नहीं कह सकते, क्योंकि स्वप्न देखने वाले को वह पूर्ण रूप से सत्य प्रतीत हो रहा है, और उस स्वप्न का कोई भी अंश असत्य नहीं। परन्तु उसी स्वप्न को सत्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसी स्वप्न द्रष्टा के जागने पर उस को स्वयं ही वह स्वप्न के पदार्थ पूर्ण रूप से मिथ्या प्रतीत होते हैं, और उस स्वप्न का कोई भी अंश सत्य नहीं।

ईश्वर की कितनी अपार कृपा है, कि उस ने यह तीन अवस्थायें जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति बना दी हैं, जिन के दृष्टान्त से इतने गहनतम विषय का रहस्य खुल जाता है, वरना इस का ज्ञान होना एक असम्भव सी बात थी।

इस सम्बन्ध में एक चित्र की याद आती है। उस चित्र में जंगल बना हुआ है, उस में एक गवाल दिखाया गया है, जो गौ को चराने के लिए जंगल में ले गया। गौ का बछड़ा किल्ले के साथ बन्धा हुआ है, परन्तु गौ नज़र नहीं आ रही। चित्रकार ने झाड़ियां, और बन के वृक्ष इस रीति से बनाए हैं, कि उन के दरम्यान की सफ़ेद जगह में गौ का चित्र बन जाता है। साधारण दृष्टि से देखने पर बन के वृक्ष, झाड़ियां, बछड़ा, गवाल और

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दूसरे पशु पक्षी नज़र आते हैं, परन्तु गौ दिखाई नहीं देती। परन्तु जब एक दो बार कोई (जिस ने वह गौ का चित्र स्वयं देखा हुआ है) दिखा दे, तो फिर जब भी उस चित्र पर दृष्टि पड़ती है, वह गौ ही सामने नज़र में आती है, जंगल के वृक्ष, झाड़ियां पशु, पक्षी, गवाल, बछड़ा, इत्यादि किसी की ओर भी नज़र नहीं जाती, यद्यपि वह उस चित्र में बिलकुल वैसे के वैसे ही चित्रांकित हैं, और उन में रत्ति भर भी फ़र्क नहीं आया। अब दृष्टि कोण ही बदल गया है। जो गौ पहले नज़र नहीं आती थी, वह अब दृष्टि पड़ते ही नज़र आने लगती है, और जो वृक्ष इत्यादि पहले नज़र आते थे, वहां रहते हुए भी, अब वह ग़ायब हैं।

ठीक इसी प्रकार अज्ञान काल में जो परमात्म तत्त्व नज़र नहीं आता और संसार स्पष्ट तौर पर सत्य प्रतीत होता है, ज्ञान होने के पश्चात (ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्म-वेत्ता से दिखाए जाने के बाद) वह परमात्म तत्त्व ही हर समय, हर जगह पर, अनायास हीं अनुभव होता है, और जो संसार नज़र आता था, वह बिल्कुल वैसे का वैसा रहते हुए भी ग़ायब है, असत्य है।

संसार को छोड़ कर जो लोग जंगलों में चले जाएंगे उन के ऐसा करने के कारण की पड़ताल यदि हम करें, तो हम को मालूम होगा, कि एक हज़ार ऐसे पुरुषों में से नौ सौ निनान्वे ऐसे होंगे, जो या तो घर के झगड़ों से तंग आ कर वहाँ चले गए हैं, या कर्ज़ा अदा न कर सकने के कारण, या किसी मुकदमे

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में फंस जाने के कारण, भूक के कारण, या संसार में रह कर कृषि, दुकानदारी, या नौकरी करने से जी चुरा कर वहां बैठे बिठाए, बिना हाथ पाऊं हिलाए हलवा पूरी भी मिले और संसारी लोग भगवे वेष के कारण माथे भी रगड़ें, और पाऊं भी छूएं। बल्कि यदि कहीं किसी मठ के मठाधीश बन जाएं, फिर तो पौबारह हैं। जिस संसार में उन को कोई पूछता भी न, उसी संसार के लोग अब उन के सामने नत मस्तक हो कर ही जाते हैं॥ परन्तु "संसार असत्य है" इस भाव से एक हज़ार में शायद ही एक आध आदमी ससार छोड़ कर जंगलों में जाता होगा। क्योंकि जिस को यह निश्चय हो गया है कि ससार असत्य है, उस को यह भी ज्ञान है कि जंगल भी उस असत्य ससार से बाहिर नहीं। संसार भी उस के दृष्टिकोन में जंगल ही है, (और जगल भी वैसा ही संसार हो सकता है, जैसा कि यह, बल्कि इस से भी ज़्यादा दुःखदाई होना सम्भव है, क्योंकि संसार को बनाने वाले तो हम स्वयं ही हैं, जैसा कि प्रश्न ३५ से ३९ तक के उत्तरों में हम विस्तार पूर्वक विचार कर चुके हैं। यदि ऐसा महापुरुष "विविक्त सेवी" हो कर आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के लिए संसार के राग द्वेष के वातावरण से अपने मन को दूषित होने से बचा कर, शान्त वातावरण में रहने के लिए जाता भी है, तो उस के चले जाने से न केवल संसार के चलने में कोई बाधा नहीं आएगी, बल्कि उस के शान्त मन से उठी हुई, शान्ति की लहरों "वृतियां" से संसार में शान्ति की स्थापना में सहायता ही मिलेगी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"संसार चलेगा कैसे ? इस फ़िकर में घुलने की हमें क्या जरूरत है ? क्या संसार को चला हम रहे हैं ? बैलों के खीचने से एक गड्डा चल रहा है, एक बालक पीछे से उस गड्डे को धक्का दे कर समझता है कि "मैं गड्डे को चला रहा हूं," तो यह उस की भूल है । हम से पहिले भी यह संसार चल रहा था, और हमारे शरीरों के न रहने पर भी यह चलता ही रहेगा। हमारे कहने या न कहने का संसार के चलने या न चलने में किंचिन्मात्र भी असर नहीं है। हम भले ही चलते हुए ससार को धक्का देकर यह अहं भाव करते रहें, कि संसार को चलाने वाले हम हैं, परन्तु ज़रा गहरा विचार करें, तो प्रत्यक्ष प्रतीत होगा कि हम अपने शरीर को चलाने में भी अपने आप को बेबस पाते हैं, संसार और दूसरे लोगों की तो बात ही क्या है। ज़रा देखिए, आंखों के निमेष, उन्मेष (खुलने, बन्द होने) में हमारा कोई हाथ नहीं है, यदि हम चाहें भी, कि ऐसा न हो, तो भी यह सम्भव नहीं। दिल की धड़कन पर हमारा कोई कन्ट्रोल (Control) नहीं। इसी प्रकार प्राणों के आने जाने में, शरीर भर में ख़ून के संचार में, और रक्त-शोधन में हमारा कोई दख़ल नहीं। अन्न बोने की क्रिया से लेकर रोटी पका कर, थाली में परोसने, और ग्रास तोड़ कर मुंह में डालने और उस को चबा कर निगलने की क्रिया तक के कर्ता तो अपने आप को शायद मान भी सकें, परन्तु निगलने के बाद हम बिल्कुल बेबस हैं। पता नहीं हज़म भी हो या न हो, बदहज़मी हो जाए, टट्टी आए, न आए, कब्ज़ होजाए, दस्त लग जाएं, कोई पता

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं, बिल्कुल बेबस हैं । जो मशीन अन्दर चल रही हैं, जिस से यह खाया हुआ अन्न ख़ून, हड्डी, मज्जा, वीर्य, पसीना, मल, मूत्र में परिणित हो जाता है, उस मशीन को हम आज तक देख भी नहीं सके, उस को चलाना तो दूर रहा। गुर्दे, तिल्ली, फेफड़े, इत्यादि की क्रियाओं में भी हमारा रंचक मात्र भी हस्ताक्षेप नहीं । फिर भी यह सब काम हो रहे हैं, हम अपने आप को बेबस पाते हैं ।

संसार की क्रियाओं में हम कितने बेबस हैं । ज़रा देखिये । साइन्स के असूल के मुताबिक गर्मियों में जब हवा गरम होती है, गरम हो कर हलकी हो जाती है, और हलकी हवा ऊपर चढ़ जाती है । इस ख़ाली जगह को भरने के लिए समुद्र से हवाएं आती हैं जो पानी के बुख़ारात से लदी हुई होती हैं, वह बारिश बरसाती हैं। परन्तु कभी २ ऐसा होता है, कि गर्मी भी पड़ती है, जिस से हवा गर्म और हलकी हो कर ऊपर को जाती हैं, परन्तु सारा साल बारिश की एक बून्द भी नहीं गिरती । अकाल पड़ जाता हैं और हम बिल्कुल बेबस होते हैं । कभी २ इतनी बारिश होती है, कि गाऊं के गाऊं बह जाते हैं और हम बेबस हो कर इस तबाही को खड़े देखा करते हैं। तो संसार को चलाने वाली शक्ति कोई और हैं, और वह अपने ही तरीके पर संसार को चला रही हैं। इस लिए यह फ़िकर, कि "संसार चलेगा कैसे," सर्वथा निरर्थक है ।

इस लिए संसार के चलने का फ़िकर करने और

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दूसरों को उपदेश करने को बजाए, यदि हम में से हर एक व्यक्ति यह समझ ले कि जंगलों में वैसा ही संसार है, और संसार में रह कर, और उस को असत्य (Transitary, अनित्य) जान कर सांसारिक कर्त्तव्यों को अपना कर्त्तव्य समझ कर करते रहें, तो ससार भी हमारे लिए जंगल से कम नहीं, तो फिर कौन संसार छोड़ कर जंगलों को जाएगा ? कोई भी अच्छा काम, जो हम चाहते हैं कि दूसर लोग करें, तो बजाए इसके कि हम मेज़ें कूट कूट कर उन को उपदेश करते फिरें, अच्छा यह है कि हम स्वयं उस पर आचरण कर के उनके सामने आदर्श पेश करें। यदि हमारे आचरण में वह गुण नहीं हैं, तो न तो हमें दूसरों को उस का उपदेश करने का अधिकार है, और न ही कोई हमारी बात सुनेगा। और यदि हम स्वयं उस पर आचरण कर रहे हैं, तो हमें उन को उपदेश करने की आवश्यकता ही न होगी, क्योंकि हमारे आचरण को देख कर वह अनायास ही वैसा आचरण करने लग जाएंगे। इस लिए दूसरों को उपदेश करना या यह फ़िकर करना कि "संसार चलेगा कैसे" ? केवल व्यर्थ ही नहीं, बल्कि सूक्ष्म रूप में अहंकार का द्योतिक है। पर-उपदेश में तो प्रत्येक व्यक्ति कुशल है, कमी है तो आचरण करने वालों की।

प्रश्न ४०—संसार किस तरह बना, इस विषय में शास्त्रों का आपस में बड़ा झगड़ा है, एक का विचार दूसरे से नहीं मिलता। कोई संसार की उत्पत्ति परमाणुओं से

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मानता है, कोई इसका निमित्त कारण ईश्वर को और उपादान कारण प्रकृति को बतलाता है। कोई ईश्वर को ही अभिन्न-निमित्त-उपादान कारण कहता है। इन में से किस को ठीक माना जाए ?

उत्तर—संसार के कारण के विषय में शास्त्रों का आपस में कोई भी झगड़ा नहीं। उन में मत भेद होने के कारण यह है कि हर एक शास्त्र की रिसर्च (Research) का क्षेत्र अलग अलग हैं। एक ही भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए ऐग्रीकलचर का मोहकमा (Agriculture Department) अच्छे बीज, खाद आदि की रिसर्च करता है, नहर का मोहकमा उसकी सिंचाई की रिसर्च करता है, इन्जनीयरिन्ग (Engineering) वाले हल, ट्रैक्टर (Tractor) आदि की, Medical Dapartment (डाक्टरी मोहकमा) हानिकारक कीड़ों के नाश के लिए ओषधी की रिसर्च करता है। उन के काम भिन्न २ होने पर भी एक का दूसरे के साथ कोई झगड़ा नहीं, बल्कि एक ही भूमि के सुधार में ही मब का तात्पर्य है। इसी प्रकार हर एक शास्त्र का अपना २ क्षेत्र है, कोई परमाणु की रिसर्च करता है, कोई ईश्वर की और कोई प्रकृति की। झगड़ा इन में कोई भी नहीं, सब का तात्पर्य जगत के आदि कारण की प्राप्ति ही है।

परन्तु उपनिषद् अथवा वेदान्त को "जगत कैसे बना" इस के जानने की उलझन में पड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि इस का अन्तिम ध्येय तो इस संसार

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का अतिक्रमण कर के, कारण के भी कारण ब्रह्मात्मा की प्राप्ति है, भले ही यह संसार परमाणुओं से बना हो, या ईश्वर ने प्रकृति को लेकर इस का निर्माण किया है, अथवा ऊर्णनाभि के समान स्वयं ईश्वर ही निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी है। रावण का बुत कागज़ों से बनाया जाता है। भला इस मग़ज़ पच्ची से क्या लाभ होगा कि "काग़ज़ कहां से लाया गया ? किस ने बनाया ? यहां यह लाल रंग अच्छा नहीं लगता, इस की जगह सब्ज़ रंग लगाया जाता, तो बड़ा सुन्दर लगता," इत्यादि। ज़रा सायंकाल तो होने दो, इस बुत का नामो निशान भी नहीं रहेगा। यह बुत रखने के लिए थोड़ा बनाया गया है, जलाने के लिए ही तो इतना कष्ट और खर्च किया ! ठीक इसी तरह संसार रखने के लिए थोड़ा बना है। ज़रा सुषुप्ति, समाधि या जीवन मुक्ति की विजय दशमी तो आने दो, रावण के बुत की राख तो मिल गई थी, संसार तो ज्ञान की अग्नि से ऐसा जल जाएगा कि इस की राख भी ढूंढे से न मिलेगी !

भूक सख्त लगी हुई है, सामने फलों से लदा हुआ पेड़ खड़ा है। यदि उन फलों को तोड़ कर और खाकर भूक निवृत करने की बजाए, मैं उस पेड़ के पत्ते, शाखाएं और उस के ऊपर बैठे हुए पक्षियों को गिनना शुरू कर दूं, तो सब से पहिले आप मुझे "दिमाग़ ख़राब" के ख़िताब से नवाज़ेंगे।

प्रश्न ४१—कुछ भी हो, "स्वे महिम्नि स्थित ब्रह्म" को

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह सूझी क्या कि बैठे बिठाए "एकोऽस्मि, बहु स्याम" का संकल्प कर के दुःखमय संसार को रच डाला ? सुख और आनन्द एकत्व में है, बहुत होने में झगड़ा, दुःख और क्लेश है। आखिर कुछ सोच कर के ही तो संसार की रचना की होगी, अन्धा धुन्ध तो की न होगी ?

उत्तर—इस प्रश्न पर विचार करने का कोई लाभ न होने पर भी वैदिक ऋषि हम जीवों पर अकारण ही कृपा करने के लिए हमारी ही परिभाषा का प्रयोग कर के हम को समझाने के निमित्त अपने इतने उच्च आसन से उतर कर और हमारी Level पर आकर इस प्रश्न का उत्तर देते हैं, कि परमात्मा के सृष्टि के रचने में दो कारण हैं :-

(१) सृष्टि रचना ही परमात्मा का स्वभाव है।
(२) जीव को उस के कर्मों का फल देने के लिए वह सृष्टि-रचना करते हैं।

प्रश्न ४२—क्षमा करना, इन दोनों कारणों पर कई शंकाओं की उत्पत्ति हो रही है, इन के समाधान की कृपा करें :-

ऊपर बताए हुए पहिले कारण पर (कि सृष्टि रचना परमात्मा का स्वभाव है) यह शंका है, कि परमात्मा तो "नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त" है। यदि सृष्टि की रचना उसका स्वभाव माना जाए, तो वह "शुद्ध" नहीं रहता, उसको माया से सम्बन्ध करना पड़ेगा, क्योंकि माया के बिना

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तो संसार की रचना होती नहीं । और यदि उस का स्वभाव "शुद्ध" माना जाए, तो वह सृष्टि की रचना नहीं कर सकता । अन्धेरा और प्रकाश जैसे एक ही समय में इकट्ठे नहीं रह सकते, इसी प्रकार "सृष्टि की रचना" और "शुद्धता" का एक साथ होना सम्भव नहीं ।

दूसरे कारण पर तो कई शंकायें हैं (१) कि श्रुति के कथन अनुसार "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् जीव-रूपतः" स्थूल शरीर की रचना कर के उस परमात्मा ने उस में जीव रूप से स्वयं ही प्रवेश किया । तो इस लिए जो भी कर्म होते हैं, वह सब परमात्मा के ही हूए । फल जीव को क्यों मिले ? कर्म अन्य करे, फल दूसरा भोगे, यह तो बड़ा अन्याय है ।

(२) यदि वह कर्म जीव के मान भी लिए जायें, तो कर्म करने के पश्चात ही तो कर्मों के फल का प्रश्न उठेगा । वह कर्म सृष्टि रचना के बाद ही तो किए जा सकते हैं । अर्थात सृष्टि-रचना ही कर्म और उस के फल का कारण है, न कि कर्म-फल सृष्टि की रचना का । जब कर्म ही नहीं, तो उन का फल कैसा ?

(३) "सदेव, सौम्य, इदमग्रासीदेकमेवाद्वितीयम्" सृष्टि-रचना से पूर्व एक सद् ब्रह्म ही था, दूसरा कोई भी नहीं था । जब जीव था ही नहीं, तो उस के कर्म कहां ?

(४) "स्वे महिम्नि स्थित" ब्रह्म को जीव रूप से शरीर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में अनुप्रवेश करने के लिए अपनी महिमा को छोड़ कर ही तो आना पड़ा होगा । मगर "यद्वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमास्ति," सुख और आनन्द तो भूमा में है, उस को छोड़ कर "अल्प" (जीव रूप) को स्वीकार करना ऐसी आशा तो एक मन्द बुद्धि मनुष्य से भी नहीं की जा सकती, परमात्मा से यह कैसे सम्भव है ?

उत्तर—शाबाश, शंकाओं की तो झड़ी लगा दी है। ऐसा प्रश्न करने से प्रतीत होता है, कि आप को उपनिषदों का खासा ज्ञान है, और उस पर मनन भी किया हुआ है । परन्तु यदि आप ने जीव के वास्तविक स्वरूप को अपने विचार में लाया होता, तो ऐसी शंकाओं की उत्पत्ति होती ही न । प्रश्न ११ के विस्तृत विचार में दी हुई "जीव" की Definition को ज़रा फिर पढ़ें । "अन्तः करण और आत्मा की चेतन शक्ति का संयोग, (जिस संयोग अर्थात जीव के होने से ही मनुष्य चलने फिरने, देखने सुनने आदि काम करने में समर्थ हो सकता हैं)"। वेदान्तिक परिभाषा में इस को यों कहा जाता है कि **जीव = अन्तः करण + अन्तः करण में ब्रह्म का आभास।** अब यदि आप अपनी शंकाओं पर फिर मनन करें, तो आप की इन "सब शंकाओं का भेदन" एक क्षण मात्र में हो जाएगा, और "कख तले पहाड़" की लोकोक्ति के अनुसार इस एक नुकते के समझ में आ जाने पर मन में इन शंकाओं की उत्पत्ति पर हैरानी और कुछ लज्जा भी होगी ।

आइए, इस पर विचार करने के लिए एक घटना

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ले लें जिस से सारा भेद एक दम स्पष्ट हो जाए :-

स्कूल में साईन्स के घन्टे में मास्टर साहिब अपनी क्लास को बताते हैं, कि "यदि एक आतशी शीशे (Lense, सूर्य-कान्त-मणि) को सूर्य के सामने रखा जाए, और उसके नीचे एक टुकड़ा काले कपड़े का रख दिया जाए, तो कुछ देर के बाद काले कपड़े को आग लग जाती है। उस क्लास के एक चतुर लड़के को Practically यह तज्जर्बा करने की सूझती है। छुट्टि होने पर घर को आते हुए, रास्ते में ही, बाज़ार से आतशी शीशा खरीद लिया। घर के सहन में फूस का एक झोंपड़ा सा बना हुआ था, उस में भूसा भरा हुआ था, गर्मी के दिन थे। दोपहर को गाए और बछड़ा भी उस के अन्दर बन्धे हुए थे। सहन में तो धूप सख्त थी, लड़का बाहिर बैठ कर तज्जर्बा कर नहीं सकता था। झोंपड़े के अन्दर काफ़ी दूर तक धूप आ रही थी। आतशी शीशे को वहीं सूर्य के सामने रख दिया और स्वयं ज़रा हट कर झोंपड़े के अन्दर छाया में परिणाम देखने के लिए बैठ गया। घर के बाकी सब छोटे बड़े साथ वाले कमरे में सोए हुए थे। लड़के को घर का दर्वाजा बन्द करना याद न रहा था, अब याद आने पर उस को बन्द करने के लिए भागा। इतने में ही आतशी शीशे के नीचे पड़े हुए काले कपड़े ने आग पकड़ ली। उस के साथ बिखरे पड़े भूसे को आग लग गई, और लड़के के वापस आने तक तो झोंपड़ा भी आग पकड़ चुका था। लड़के के चिल्लाने पर घर वालों की जाग खुली। उन के पहुँचने तक तो झोंपड़े की छत और अन्दर पड़ा हुआ भूसा जलने लगे। अन्दर से गाए

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और बछड़ा चिल्ला रहे थे। आग को बुझाने के लिए उस पर डाला हुआ पानी तेल का काम कर रहा था। न केवल गाए, बछड़े को न बचाया जा सका, बल्कि दूसरा कमरा जलने लगा। हवा तेज चल रही थी, गली के इधर उधर के मकान भी आग की लपेट में आ गए। फ़ायर इंजन पहूंच गए। उन का एक कर्मचारी धंए से बेहोश हो गया, उस को हस्पताल में भेज दिया गया परन्तु बेचारे ने रास्ते में ही दम तोड़ दिया। दूसरे एक कर्म चारी का मुहं झुलस गया। आग के बुझाते बुझाते चार और मकान जल कर ख़ाक हो गए। उन के अन्दर का सारा सामान, कपड़े, लत्ते, ज़ेवर, बर्तन, हज़ारों रुपयों का नुकसान हो गया।

कितने बड़े भारी दुःख मय संसार की रचना हो गई! अब प्रश्न उठता हैं, कि सूर्य को यह सूझी क्या, कि बैठे बिठाए इतने दुःखमय संसार को रच डाला? आप फ़ौरन कह उठेंगे, "सूर्य ने यह रचना थोड़ी की है! वह तो नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी पर से अपना ताप ज़मीन को दे रहा है, और यह ताप कोई आज तो नहीं दिया। अर्बों वर्षों से ऐसा ताप ज़मीन पर आ रहा है। उस झोंपड़े को बने हुए भी तो हो गए हैं, ज़्यादा नहीं तो, पांच वर्ष। इन पांच वर्षों में सूर्य की गर्मी, यदि इस से ज़्यादा नहीं तो इतनी तो पड़ती ही रही है। परन्तु आज से पहिले तो यह कभी न जला!" फिर प्रश्न होता है कि "यह तबाही आतशी शीशे ने की होगी?" आप इस से भी इन्कार करते हुए इसका

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण बतलाते हैं कि "दुकानदार के पास वह शीशा और इस प्रकार के छः और आत्शी शीशे तीन सालों से पड़े हुए हैं। भला उसकी दुकान को न जला देते !" ।फर प्रश्न खड़ा होता है कि "झौंपड़ा, चार पांच मकान, मकानों के अन्दर का हज़ारों रुपए का सामान, गाए, बछड़ा इस अग्नि कांड में स्वाहा हो गए, फ़ायर ब्रीगेड का एक कर्मचारी जान से हाथ धो बैठा, दूसरा झुलस जाने से आयु भर के लिए नाकारा बन गया, इतनी बडी तबाही लड़के ने भी तो नहीं की। उस ने तीली नहीं लगाई, बल्कि वह बेचारा तो दरवाज़ा बन्द करके वापस आने पर इस भयानक दृष्य को देखकर भयभीत हो चिल्लाने लगा। घर के दूसरे आदमियों का भी तो इस में कोई हाथ नहीं, वह तो कमरे के अन्दर आराम की नींद सो रहे थे। फिर इस तबाही का कारण है कौन ? आप इस का उत्तर एक दम यह देंगे कि "इस का उत्तर-दायित्व सूर्य और आत्शी शीशे के सम्बन्ध पर है। सूर्य के सामने शीशे के रखे जाने पर उसकी किरणें शीशे में से गुज़र कर काले कपड़े पर पड़ी, जिन से वह जल उठा और आगे सारी तबाही हुई।" बस, बिल्कुल ठीक, यही कारण है। न अकेले सूर्य ने यह भयानक कांड रचा और न ही अकेले आत्शी शीशे ने। जब आत्शो शीशा सूर्य के अभिमुख हुआ और उसने सूर्य की किरणों को ग्रहण किया, तभी यह सारा कर्म सम्भव हो सका। इस को हम कवियों की भाषा में यों कह सकते हैं, कि "जब आत्शी शीशे का कर्म में प्रवृति का समय आया, तो सूर्य ने उस में स्वयं प्रवेश किया।"

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अब आइए, इस दृष्टान्त को सिद्धान्त में घटाएं:—

दृष्टान्त में	सिद्धान्त में
सूर्य	ब्रह्म, परमात्मा
आतशी शीशा	जीव (साभास अन्तःकरण)
सूर्य की किरणें	ब्रह्म का आभास (चेतन शक्ति)
शीशे की convex बनावट	जीव के कर्म

अब आप की शंकाओं का समाधान एक चुटकी में हो जाएगा। एक शंका तो आप की परमात्मा के स्वभाव के सम्बन्ध में थी। इस विषय में आप की जो धारणा है कि परमात्मा नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव है, वह पूरे सोल्हों आने ठीक है। जैसा कि इस प्रश्न के उत्तर के आरम्भ में कहा गया था, भगवती श्रुति और कृपालु ऋषि हम बेसमझों को समझाने की खातिर, हमारी समझ के अनुसार, हमारी ही द्वैत की परिभाषा में, "परमात्मा का स्वभाव सृष्टि रचना हैं," ऐसा कहते हैं' वरना माया से उस का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। सूर्य की गर्मी से ही संसार में मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतंग और बनस्पति आदि का जीवन है, उक्त अग्नि कांड में उसी की गर्मी से यह सारा विनाश हुआ ज़रूर, परन्तु इस विनाश का उत्तरदायित्व सूर्य पर लेशमात्र भी नहीं है। नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी से हमेशा की तरह वह अपना प्रकाश और ताप संसार को दे रहा है। उस को तो मालूम भी नहीं, कि इतना भयानक उत्पात उस के कारण ही हुआ है। ठीक इसी तरह परमात्मा की चेतन शक्ति से ही इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय हो रहा प्रतीत होता है ज़रूर, परन्तु यह सब कुछ आतशी शीशे

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के सूर्य के अभिमुख आ जाने के समान, जीवों के परिपक्व कर्मों के परमात्मा के अभिमुख आ जाने से हो रहा है, वरना सृष्टि रचना का उत्तर दायित्व परमात्मा पर लेशमात्र भी नहीं है। वह तो सदा सर्वदा ही अपने शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव में स्थित हैं।

आप की चार शंकाओं में से पहिली शंका परमात्मा के जीवरूप से शरीर में प्रवेश करने के सम्बन्ध में है। उपरोक्त दृष्टान्त में सूर्य ने आतशी शीशे में प्रवेश किया। इसका यह अर्थ तो नहीं कि सूर्य अपनी जगह से उतर कर आया और आतशी शीशे में घुस गया। हमारी पृथिवी से हज़ारों गुना बड़ा सूर्य भला दो चार इन्च घेरे के एक छोटे से आतशी शीशे में कैसे प्रवेश कर सकता है ? हां, शीशे के सूर्य के सामने आ जाने से उस में उसकी किरणें (सूर्य की शक्ति) ज़रूर प्रवेश करती है, परन्तु इस प्रवेश में सूर्य का कोई भी दखल नहीं है। इसी प्रकार जीव के ब्रह्म के सामने आ जाने से उस में ब्रह्म का आभास अर्थात उसकी चेतन शक्ति प्रवेश करती है। शब्द "प्रवेश" से फिर ग़लत-फ़हमी न हो, इस लिये इस को फिर अच्छी प्रकार समझ लेना आवश्यक है कि, अन्तःकरण सत्त्वगुण का कार्य होने से अतीव ही स्वच्छ है और इस लिए वह ब्रह्म की चेतन शक्ति को ग्रहण कर के "चेतन सा" हो जाता है, जिस को जीव कहते हैं। बस, इसी को "प्राविशत् जीव-रूपतः" (जीव रूप से शरीर में प्रवेश किया) ऐसा कवियों की परिभाषा में श्रुति कहती है। वरना, जिस ब्रह्म के

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"केवल चौथे हिस्से में ही यह सारा संसार स्थित है," और बाकी के तीन हिस्सों को संसार छू तक नहीं गया, वह शुद्ध अवस्था में ही स्थित हैं, ऐसे महान महान परमात्मा (इसी लिए तो उस को "ब्रह्म" कहा गया है) का छोटे से शरीर में प्रवेश बिल्कुल ही बेमैनी बात हैं ।

उपरोक्त उदाहरण में क्या सूर्य उस सारी तबाही का कर्त्ता माना जा सकता है ? हरगीज़ नहीं । जैसा कि ऊपर कह आए हैं, वह तो नौ करौड़ तीस लाख मील की दूरी पर से सदा सर्वदा की भान्ति अपनी गर्मी दे रहा हैं। उसे तो पता भी नहीं कि उस की गर्मी का ऐसा प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार परमात्मा भी कर्मों का कर्त्ता नहीं है । इस लिए कर्त्ता अन्य होने से "अन्य के कर्मों का फल अन्य के भोगने का" वह प्रश्न उठता ही नहीं, जो प्रश्न इस शंका में उठाया गया है।

२. दूसरी शंका यह है कि "सृष्टि के आरम्भ में जीव के कर्म तो होते नहीं, क्योंकि कर्म तो वह सृष्टि रचना के बाद ही आरम्भ कर सकते हैं । जब कर्म ही नहीं, तो यह कहना कि सृष्टि की रचना जीव को उस के कर्मों का फल देने के लिए की गई है, समीचीन नहीं"। इस का समाधान यह है, कि जीव के कर्म अनादि है, यह नहीं कि किसी विशेष कल्प के आरम्भ होने पर ही वह कर्मों का आरम्भ करता है । जो भी कर्म किए जाते हैं उन सब के संस्कार चित की प्लेट पर अंकित हो जाते हैं, जैसे ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड पर गाने इत्यादि के। जब तक कर्मों का अच्छा या बुरा फल भोग नहीं लिया जाता,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अब आख़री शंका ब्रह्म के "स्वः महिम्नि स्थित" होने में थी। इस शंका का निराकरण तो as a Corrolary स्वयमेव हो ही जाना चाहिए, क्योंकि शब्द "प्रवेश" का तात्पर्य हमारे मन पर अच्छी प्रकार से अंकित हो चुका है। आत्शी शीशे से "नौ करोड़ तीस लाख मील" की दूरी पर स्थित और सारी पृथिवी से एक लाख गुना बड़े सूर्य का लड़के के मकान के अन्दर, सहन के एक कोने में बने हुए झौंपड़े के अगले भाग में पड़े हुए दो इन्च diametcr. में बने हुए आत्शी शीशे में प्रवेश, कितना हास्यप्रद है! और जिस की अपेक्षा से यह इतना महान सूर्य भी एक कण से ज़्यादा नहीं, ऐस परमात्मा का, अन्तः करण में प्रवेश, केवल हास्यप्रद ही नहीं, बल्कि अज्ञान मूलक भी है। जिस प्रकार सूर्य सृष्टि के आरम्भ काल से लेकर इस समय तक अपनी जगह पर पूर्ण रूप से स्थित है, आत्शी शीशे में प्रवेश करने के लिए अपनी जगह से एक इन्च भी नीचे नहीं हिला, उसी प्रकार परमात्मा भी अपनी महिमा में पूर्ण रूप से स्थित है। उस ने एक क्षण के लिए भी "अल्प भाव" जीव रूपता, को स्वीकार नहीं किया। "प्राविशत् जीव रूपतः" वेद का यह वचन केवल अलंकार रूप से कवियों की भाषा में कहा गया है।

प्रश्न ४३—वाह! कमाल है यह आत्शी शीशा! एक ओर तो इस ने इतनी बड़ी सम्पत्ति को स्वाहा कर के कइयों को कङ्गला बना दिया, और दूसरी ओर हमारी इतनी शंकाओं को एक दम स्वाहा कर के और इतनी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्पष्टता से उनका समाधान करके हमें आध्यात्मिक सम्पत्ति से मालामाल कर दिया! अब प्रश्न यह, है कि क्या संसार को असत्य अर्थात परिवर्तन शील मान कर समाधि लगा कर बैठ जाएं? इस प्रकार हाथ पर हाथ रखकर निठ्ठले बैठ रहने से, और ऐसी थोथी थ्योरियों को मानने या न मानने से संसार की अशन्ति दूर थोड़ी हो जाएगी?

उत्तर—मार्ग दो हैं, एक निवृत्ति मार्ग और दूसरा प्रवृत्ति मार्ग। इन में से निवृत्ति मार्ग को यद्यपि शास्त्रों में श्रेष्ठतर माना गया है, परन्तु है यह अत्यन्त कठिन मार्ग। इस में अपनी इन्द्रियों, और मन, बुद्धि पर बड़ा भारी संयम करना पड़ता है। विषय विकारों से झूझना पड़ता है। दम्भ, मिथ्याचार, अनाचार और दुराचार में फंस कर गिरावट का भय भी आखरी दम तक लगा रहता है। परन्तु जो वीर पुरूष इन बुराइयों से अपना पल्ला बचाता हुआ अपनी पूरी शक्ति से साधन में तत्पर रह कर समाधि की परम पवित्र अवस्था तक पहुँच पाता है, वह निठ्ठला बैठा हुआ नहीं। चौकड़ी लगा कर एक स्थान पर बैठा हुआ भी ऐसा महान आत्मा अपनी आत्मा से शान्ति के स्रोत Cosmic mind को प्रेर्णा कर के सारे संसार भर में शान्ति की लहरों को उत्पन्न कर के अशान्ति को दूर करने में बड़ी सहायता कर रहा होता है। क्रिया रहित बैठे दीखता हुआ भी, वह उन महा पुरूषों के लिए क्षेत्र त्यार कर रहा होता है, जो शरीर द्वारा कर्म कर के इस ओर लगे हुए हैं। ऐसे पवित्र-आत्मा जन, रोटियों के लिए हाथ पसारे हमारे

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पास नहीं आते, पाखंड कर के नाम और दाम के चक्कर में नहीं फंसा करते, और या फिर कबर खोद कर उस में पड़ कर ऊपर से सीमैन्ट से बन्द कर के १०, १५, २० दिनों की "समाधि" लगा कर मदारियों के से तमाशे नहीं दिखाया करते। वह तो संसारी लोगों से नज़रें बचा कर सकल संसार के लोगों, बल्कि प्राणी मात्र की शान्ति और हित के लिए जुटे रहते हैं। परमहंस स्वामी रामकृष्ण, श्री अरविन्द, तथा स्वामी राम तीर्थ इत्यादि ने आधुनिक युग में इस क्षेत्र में बड़ा भारी काम किया है। और अप्रसिद्ध रूप से तो हज़ारों ऐसे योगिजन इस क्षेत्र में लगे हुए हैं। परन्तु, जैसा कि ऊपर विचार हुआ, यह निवृत्ति मार्ग बड़ा कठिन मार्ग है। और प्रवृत्ति मार्ग में चल कर ही इस मार्ग का ग्रहण करना उचित है, वरना गिरावट का भय है, जिस से संसार का कल्याण होने की बजाए अहित होने की सम्भावना है।

और प्रवृत्ति मार्ग में तो आज पं० जवाहर लाल नहरू से बढ़ कर आदर्श और कौन हो सकता है! राष्ट्रपिता महात्मा गांधि के उपदेश को लेकर वह "कृण्वन्तो विश्व-मार्यम्" वेद के इस आदेश को, "अहिंसा" और "सत्य" के आधार पर, संसार के कोने कोने में फैला रहे हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"स निश्चयेन योक्तव्यो योगो-
ऽनिर्वण्ण चेतसा ।
(ग० ६-२३)

तीसरा भाग

साधन

(Practical aspect)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साधन

जिस ज्ञान रूप विशाल बाग़ का विवरण हम ने पिछले पृष्ठों में पढ़ा है, परमात्मा की अपार कृपा से, कर्म और भक्ति की सड़कों पर चलकर, आख़िर उस बाग़ के द्वार तक हम पहुँच पाए हैं। परन्तु बाग़ का फाटक बन्द है। अब, इस फाटक को खोलना बाकी है। "अभ्यास" और "वैराग्य" रूप दो औज़ारों से "श्रद्धा" रूप फौलाद की "साधन" रूप चाबी त्यार हो जाती है। और विचित्रता यह है, कि फाटक के खोलने वाला ही बाग़ का मालिक बन जाता है। फाटक का खोलना मात्र ही बाग़ का मूल्य है, उसकी कीमत और कुछ अदा नहीं करनी पड़ती।

अभ्यास का अर्थ किसी काम को बार बार करने का नाम "अभ्यास" है। छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा काम, चाहे सांसारिक हो या पार्मार्थिक, अभ्यास से ही सिद्ध हो जाता है। पहिले पहिल जो काम पहाड़ जैसा कठिन प्रतीत होता है, अभ्यास से वही काम बच्चों का खेल सा बन जाता है। पहिली श्रेणी के बच्चे को एम० ए० की पुस्तकों को देखकर भी डर लगता है, परन्तु सोल्ह वर्षों के निरन्तर अभ्यास से एम० ए० की परीक्षा पास करने में उसे ज़रा भी दिक्कत प्रतीत नहीं होती॥ "टैनिस" शुरु करने वाले को हाथ में "रैकेट" पकड़ना भी नहीं आता, परन्तु कुछ ही समय के अभ्यास (Practice) से ऐसी कटें लगाने लग जाता हैं कि वह स्वयं भी दंग रह जाता है॥ हवाई जहाज़ पहिले पहिल बनाने पर भद्दा सा उड़न-

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खटोला बनाया, जो दस पन्द्रह मील की रफ्तार से ही उड़ सकता, परन्तु अभ्यास से अब आला finish के राकेट बना लिए गए हैं, जो हज़ार मील एक घन्टे में तै कर जाते हैं।। मामूली से मामूली, रोटी पकाने का, काम शुरु करने पर भी पहिले पहिल तो कोई रोटी जल जाती है, और कोई कच्ची रह जाती है, परन्तु पकाने का अभ्यास हो जाने पर एक भी रोटी ऐसी नहीं पकती, जो फुटबाल की तरह फूली हुई न हो। **"Practice makes a man Perfect."**

सो, किसी भी काम की **Perfection** (सिद्धि) के लिए **Practice** (अभ्यास) आवश्यक है।

(२) अभ्यास के बिना किसी भी काम में सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

(३) कोई बड़े से बड़ा, कठिन से कठिन और असम्भव समझा जाने वाला काम ऐसा नही, जो अभ्यास से सिद्ध न हो जाता हो। अभ्यास की बर्कत से ही दीन से दीन और पापी से पापी कहलाने वाला जीव ब्रह्म को पा जाता है।।

वैराग्य का अर्थ "वैराग्य" का शब्द सुनते ही हम में से कई महानुभाव कांप उठते हैं, कि यह तो संसार के त्यागने का द्योतक है। परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। हमारे ही ग़लत आचरण और उल्टे प्रयोग के कारण कई शब्द ऐसे हैं, जो बेचारे अपना वास्तविक अर्थ खो बैठे हैं, जैसे "वेदान्त," "सन्यास," (संसार का) "मिथ्यात्व" इत्यादि। "वैराग्य" उनमें से एक ऐसा ही

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शब्द है। कितना Innocent है यह शब्द, और कितना भयंकर रूप दे दिया गया है इसको!

"राग" का अर्थ स्पष्ट है, "किसी वस्तु में फंसाहट, या चिपकाहट"। "वैराग्य" का अर्थ हुआ "फसाहट में न फंसना"। कहां है इसमें संसार त्याग का भाव? हां, संसार की चीज़ों में फंसाहट का निषेध ज़रूर इसके अर्थ से होता है। परन्तु इसमें बुराई क्या, और इस से कांपना कैसा! फसाहट कोई अच्छी चीज़ थोड़ी है, कि उस के निषेधात्मक शब्द को सुनकर हम काँप उठें। फंदे में फंसा हुआ एक छोटा सा पक्षी भी फंसाहट से निकलने के लिए कितना तरद्दुद करता है! और हम मनुष्य हो कर फंसाहट में फसे रहने को अच्छा समझें, ता यह हमारी भूल है, और विशेष कर, जब यह फंसाहट उन वस्तुओं में हो, जो हमारे कार्य की सिद्धि में रुकावट डालती हैं।

अभ्यास अकेला चल ही नहीं सकता, जब तक उस के साथ वैराग्य न हो। गाड़ी का एक पहिया तो ठीक चल रहा हो, यदि दूसरा ज़मीन में मज़बूती से गढ़े हुए लोहे के बड़े खोंटे में फंस गया हो, तो गाड़ी का उस खोंटे के गिर्द घूमना तो सम्भव है, परन्तु अपने गन्तव्य और प्राप्तव्य स्थान पर उसका पहूंचना असम्भव है, वहां पहूंचने के लिए तो उसके पहिये को खोंटे की फंसाहट से निकलना ही होगा॥ एक किसान अपने खेत की आबपाशी एक राजबाहे से करता है, यदि वह खेत से बाहिर पानी निकालने वाली दूसरी नालियों को बन्द नहीं करता, तो उसके खेत की आबपाशी हो नहीं सकेगी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आबियाना तो लगेगा ही, आब-ज़ाए का जुर्माना, जो ठुक जाएगा, सो अलग ।। शुत्रुओं का पता लगाने वाली स्कऊटों की पार्टी, जाते हुए पगडंडियों पर → ("आगे चले आओ") ऐसी निशानी लगाती जाती है, ताकि पीछे आने वाली गार्द उस रास्ते का अनुसरण करती जाए। परन्तु जिधर दुश्मन का डर है, उस ओर जाने वाली पगडंडियों पर × ("इधर मत जाओ") ऐसी निशानी नहीं लगाते, तो सम्भव है, कि पीछे आने वाली गार्द उधर को ही चल दे और दुश्मन के नर्गे में आ जाए ।। बस, पहिये का सड़क पर चलते जाना, किसान का खेत को पानी देना, और स्काऊटों का उपरोक्त "आगे चले आओ" की निशानी "**अभ्यास**" है। दूसरे पहिये को खोंटे की फंसाहट से बचाना, किसान का बोकी की नालियों को बन्द करना, और स्काऊटों का ग़लत रास्ते को × यह निशानी लगा कर बन्द करना "**वैराग्य**" है। अंग्रेज़ी के आसान शब्दों में Do's "अभ्यास" हैं, और Donts "वैराग्य" हैं। शास्त्रीय परिभाषा में कर्तव्य कर्म (विधिमुख कर्म या उपादेय कर्म) "अभ्यास" हैं, और त्याज्य कर्म, (निषेधात्मक कर्म, या हेय कर्म) "वैराग्य" हैं। यह दोंनो एक दूसरे के Complements हैं, एक के बिना दूसरा अधूरा है। इस लिए वैराग्य को हव्वा समझ कर, उससे घबड़ाने की हमें रंचक मात्र भी आवश्यकता नहीं। यह संसार के त्याग का द्योतक नहीं है, बल्कि हल्वा पूड़ी खाते हुए भी वैराग्य पर आरूढ़ रहा जा सकता है। सावधानी केवल इतनी मात्र चाहिये कि हल्वा पूड़ी मिलने पर ("सदा ही ऐसी अवस्था बनी रहे," ऐसी लालसा रूप) आसक्ति न हो, और न मिलने पर उनकी याद में मुंह से लारें टपकती

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न रहें, और उनकी प्राप्ति के लिए ज़मीन और आस्मान एक न कर दिए जाएं ।

आध्यात्मक और सांसारिक दोनों ही क्षेत्रों में इन दोनों की परम आवश्यकता है । इन के बग़ैर साधन अथवा कोई भी कर्म वैसे ही असम्भव हैं, जैसे दोनों पांओं के बिना पर्वत की चोटी पर पहुँचना ।।

श्रद्धा, विश्वास "अभ्यास" और "वैराग्य" के इन दोनों औज़ारों का प्रयोग (साधन की चाबी बनाने में) तभी हो सकता है, जब "श्रद्धा" की फ़ौलाद मुहय्या हो। यदि मुझ को साधन की सफलता में विश्वास ही न हो, तो मैं अभ्यास शुरु करूंगा ही कैसे ! यदि मैं शक में ही पड़ा रहूं, कि "पता नहीं, परमात्मा कोई वस्तु है भी या नहीं ? यदि है, तो क्या मेरी उस से एकता सम्भव भी है या नहीं ? यदि सम्भव हो भी, तो भी जो साधन हमें शास्त्र या गुरूजन बतलाते हैं, क्या वह ठीक भी हैं, या हम को केवल फुसलाने के लिए हैं ?" इत्यादि इत्यादि संशयों में पड़ा रहूँ, तो एक कदम आगे बढ़ना भी असम्भव है। गीता में भगवान ने तो ऐसे "संशयात्मा पुरुष का नाश हो जाता है," ऐसा कहा है । और यह बात है भी अनुभव-सिद्ध । चाहे सांसारिक काम भी हो, विश्वास के बिना नहीं हो सकता । सांसारी लोगों से हम रोज़ाना धोका खा ही रहे हैं । चीज़ों की कीमतों का ज्ञान न होने के कारण, हम उन की दुगनी कीमत दे ही तो आते हैं। चीज़ों की ख़ालसियत का ज्ञान न होने से हम मिलावट

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाली चीज़ें ले ही तो आते हैं। ट्रेन में सफ़र करने पर हम ट्रेन के ड्राइवर पर विश्वास करते ही तो हैं। उस की शकल तक से परिचित न होने पर भी ट्रेन में लम्बी तान कर सो जाते हैं, और विश्वास करते हैं, कि वह हम को गन्तव्य स्थान पर ठीक पहुँचा देगा। यदि हम उस पर विश्वास न करें, तो गन्तव्य स्थान पर कभी पहुँच ही न सकें। इसी प्रकार आध्यात्मक पथ पर चलने के लिए भी हमें शस्त्रों और गुरूजनों की बताई हुई प्रक्रियायों पर विश्वास करना ही होगा। जो चीज़ हमने देखी नहीं, उस के सम्बन्ध में उस को देखे हुए पुरुष से उस का वर्णन सुन कर, उस पर विश्वास करने के सिवाए और चारा भी तो कोई नहीं! हां, विश्वास के सम्बन्ध में हमें दो बातें याद रखनी पड़ेंगी:-

(१) कि वह विश्वास "अन्धविश्वास" न हो, बल्कि तर्क-सहित विश्वास हो। और

(२) वह तर्क-सहित हो, कुतर्क-सहित न हो। अर्थात उस में जो तर्क की जाए, वह "तर्क के लिए ही तर्क" न हो, बल्कि उस तर्क से वस्तु के ज्ञान प्राप्त करने में एक कदम और आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त किया जाए।

अब, यदि हम हिम्मत करके श्रद्धा रूप फौलाद और अभ्यास तथा वैराग्य रूप दोनों औज़ारों को प्राप्त करके साधन रूप चाबी त्यार करके अज्ञान रूप ताले को खोल दें, तो फाटक के "बुद्धि" तथा "अहंकार" रूप दोनों दर्वाज़े (जो अज्ञान के ताले से बन्द हैं) ज्ञान रूप बाग़ की ओर खुल जाएंगे! बस, फिर क्या! फिर तो हम

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निशंक हो कर उस ज्ञान रूप बाग़ में प्रवेश कर जांएगे !! ("विशते तदनन्तरम्"), और यह प्रवेश केवल सैर करके वापिस आने के लिए नहीं, बल्कि बाग़ का मालिक बन कर, सदा सर्वदा के लिए वहीं निवास करने के लिए !!!

जिस बाग़ के विवरण के सुनने मात्र से ही शरीर आनन्द से रोमाञ्चित, आंखें प्रकाशित, इन्द्रियां केन्द्रित, मन पुल्कित, चित हर्षित, बुद्धि उत्साहित, और क्षुद्र-अहंकार गलित हो उठे हैं, उसमें प्रवेश कर जाने पर आनन्द ही आनन्द होगा, इस में शक ही क्या !!!!

आत्म साक्षात्कार के साधन
उपयोगी युक्तियां

गुरु चरणों में उपसन्न होने से पूर्व साधक के लिए निम्नलिखित युक्तियाँ सहकारी और उपयुक्त सिद्ध हो सकती हैं ।

(१) आत्म परिक्षण तथा Auto Suggestion

ध्येय:- साधन में उपयोगी, शरीर, के प्रत्येक अंग को निरोग और सबल बनाना ।

विधि:- जिस प्रकार सेना का नायक फ़ौज को ड्रिल कराने से पहिले फ़ौज के हर एक सिपाही की वर्दी का inspection करता है, सिर से पांओं तक देखता है, कि वर्दी साफ़ है, पगड़ी ठीक बन्धी हुई है, कोट के बटन बन्द हैं, इत्यादि इत्यादि, इसी प्रकार अपने आप को बुद्धि के स्तर पर रख कर (अर्थात शरीर इन्द्रियों, मन, और

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चित्त से अपने आप को अलग करके) साक्षी (inspector) रूप से, सिर से लेकर पांओं तक शरीर के प्रत्येक अंग का परीक्षण करना है, इस तरह :-

मस्तिष्क – आप की कृपा से बिल्कुल ठीक है।

समरण-शक्ति – ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।

धारण-शक्ति – ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।

आँखें – लिखने पढ़ने का काम पांच पांच छः छः घाटे रोज़ाना, आप की कृपा से बड़ा अच्छा हो रहा है। दूर की नज़र यद्यपि बचपन से ही कमज़ोर है, और अवस्था के अनुसार दूर की पहचान कुछ कम हो रही है, परन्तु आपकी कृपा से गुज़ारा बहुत अच्छा चल रहा है।

कान – आपकी कृपा से बिल्कुल ठीक सुनते हैं।

नाक – ,, ,, ,, सूंघने की शक्ति बिल्कुल ठीक है।

ज़बान – ,, ,, ,, बोलने और चखने की शक्तियां दोनों ठीक हैं।

त्वचा – आपकी कृपा से स्पर्श शक्ति बिल्कुल ठीक है।

दांत – आपकी कृपा से मजबूत हैं, दो हिलने वाले दांत भी अब आपकी कृपा से मज़बूत हो गये हैं।

गला – थोड़ा ख़राब है। मालूम भी है कि संतरा अनुकूल नहीं, गले को पकड़ लेता है, फिर भी अपनी ग़लती से खा लिया। आपकी कृपा से आज कुछ अच्छा है। कल ज़्यादा अच्छा हो जाएगा। आगे ऐसी ग़लती से सावधान रहूंगा।

बाज़, हाथ, उंगलियां—सब ठीक हैं, आपकी कृपा से।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

छाती, फेफड़े – सब ठीक हैं, आपकी कृपा से।
पेट, पसलियां – ,, ,, ,, ,, ,, ,,
गुर्दा, तिल्लि – ,, ,, ,, ,, ,, ,,
मस्साना – कमज़ोर है। हर तीन घन्टे बाद पेशाब के लिए जाना पड़ता है। आपकी कृपा से ठीक हो जाएगा।

मेरू-दन्ड – आपकी कृपा से बिल्कुल ठीक है।
शौच शुद्धि – ,, ,, ,, ठीक हो जाती है।
टांगें, पाओं, उंगलियां—बिल्कुल ठीक हैं। छः मील रोज़ाना चलने, बल्कि आठ नौ मील चलने से भी थकावट नहीं होती। बड़ी कृपा

नोट :- जहां अंग ठीक हैं, वहां परमात्मा की कृपा का अनुभव करना। जहां कोई रोग हो, वहां
(१) अपनी ग़लती मानना,
(२) आगे के लिए सावधान रहने की प्रतिज्ञा करना, और
(३) Auto suggestion करना, कि रोग आहिस्ता २ कम हो रहा है, शीघ्र दूर हो जाएगा।

नोट २ :- उपरोक्त निरीक्षण, लेखक के शरीर का है, हर एक साधक का निरीक्षण अपने २ शरीर की अवस्था के अनुसार होगा।

नोट ३ :- उपरोक्त शब्द ज़रूरी नहीं। हर एक साधक अपने शब्दों का प्रयोग कर सकता है। मुख्य चीज़ भाव है। भाव यह है, कि जहां भी ग़लती या बुराई है, वह "मैं" की (अर्थात तुच्छ अहंकार की) है, और

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जहाँ भी गुण और अच्छाई है, वह "आप" (अर्थात परमात्मा) की है ॥

२ पंचकोश विवेक ("नेति," "नेति")

ध्येय :- जो कुछ हमने अपने आप को समझ रखा है, हम वह नहीं हैं, अपने आप को वह समझना हमारी हिमालय जितनी भारी भूलहै, उस भूल का सुधार।

उदाहरण :- जिस प्रकार किसी मनुष्य ने अपने शरीर को सर्दी से बचाने के लिए (१) बन्यान, (२) कमीज़ (३) स्वैटर, (४) कोट और (५) ओवर कोट पहन रखे हैं, यह पाँचों के पांचों कपड़े उस मनुष्य का शरीर नहीं है, बल्कि उसका शरीर इन पांचों कपड़ों (कोशों) से ढका हुआ, इन कपड़ों से भिन्न है।

अथवा, जिस प्रकार बादाम-रोग़न बादाम के पाँच छिलकों से ढका हुआ होता है। (१), (२) ऊपर के दो पतले छिलके, जो बाज़ार में बिकने के लिए जाने से पहिले उतार लिए जाते हैं, (३) सख़त काठा छिलका, (४) लाल रंग का पतला सा छिलका, (५) सुन्दर सफ़ेद गिरि। यह पांचों के पांचों छिलके बादाम-रोग़न नहीं हैं। बादाम-रोग़न इन पाँचों छिलकों (कोशों) से ढका हुआ, इन से भिन्न है।

अथवा, जिस प्रकार एक हीरा को चुराए जाने से बचाने के लिए उस पर (१) मख़मल का ग़िलाफ़ (कोश) चढ़ा दिया जाता है, उस के ऊपर (२) साटन का फिर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(३) करेब का, उस के ऊपर (४) पाप्लेन का, और उस से ऊपर (५) फटे पुराने, मैले कुचैले खद्दर का। यह पांचों के पांचों गिलाफ़ हीरा नहीं हैं। हीरा इन पांचों गिलाफ़ो (कोशों) से ढका हुआ, इनसे भिन्न है।

इसी प्रकार आत्मा (हमारा वास्तविक स्वरूप) छुपन छोत की खेल में (१) अन्नमय कोश, (२) प्राणमय कोश, (३) मनोमय कोश, (४) विज्ञानमय कोश, (५) आनन्द-मय कोश में छुपा हुआ है। यह पांचों के पांचों कोश "मैं" (हम सब का आत्मा) नहीं। इन पांच कोशों से ढका हुआ "मैं" इन से भिन्न हूं।

विधि :- (१) **अन्नमय कोश** -: यह स्थूल शरीर है। यह नाम इसका इस लिए है, कि माता पिता से खाए हुए अन्न के प्ररिणाम रज, वीर्य से इसकी उत्पत्ति होती है। पहिले माता के दूध रूप अन्न, और दाँत निकल आने के बाद गेहूं, चावल आदि अन्न से इसकी वृद्धि होती हैं। और मरने पर फिर यह मिट्टी रूप अन्न के साथ मिल जाता है।। यह शरीर एक प्रकार का मकान है, जिसमें दस दरवाज़े हैं। इसी मकान में रहकर "मैं" (आत्मा) जीव के रूप में संसार के भोग भोगता हूं। परन्तु कितना आश्चर्य है, कि मैं यह कहने लग गया हूं कि यह मकान (शरीर) ही "मैं" हूं। ऐसा कहने वाले के लिए उचित स्थान तो आगरा का mental hospital है, परन्तु चूंकि प्रायः हम सब ही ऐसा कहते हैं, किस २ को आगरा भेजा जाए! सारा संसार आगरा बन गया है!!

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जब मैं कहता हूं कि "यह पुस्तक मेरी है," तो एक छोटा सा बच्चा भी समझता है, कि पुस्तक अलग चीज़ है, में उस से अलग हूं, और उस पुस्तक का मालिक हूँ। इसी प्रकार जब में कहता हूं कि "यह सिर मेरा है," "यह आंखें मेरी हैं" इत्यादि शरीर के सभी अगों को मैं "मेरा" कहता हूं। और "मेरा शरीर कमज़ोर है," सारे शरीर को भी "मेरा" कहता हूँ, तो कितनी स्पष्ट बात है कि "मैं" शरीर से भिन्न हूँ, और इस का मालिक हूं। परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि दूसरे ही क्षण में मैं कहने लगता हूं कि "मैं" कमज़ोर हो गया हूं," मैं चल फिर नहीं सकता"! कितनी महान भूल है !!

जो शरीर जाग्रत के हटते ही स्वप्न और सुषुप्ति में मेरा साथ नहीं देता, उसको "मेरा" कहना भी मेरी भूल है, "मैं" कहना तो रहा एक तरफ़। स्वप्न के भोग भोगने के लिए जब यह शरीर मेरा साथ नहीं देता, मक्कर करके मुर्दों की तरह पड़ रहता है, तो मजबूर होकर मुझे स्वप्न में एक और शरीर की रचना करना पड़ती है। परन्तु यह मेरी उदारता है कि स्वप्न वाले शरीर को मैं "मैं" तो छोड़ "मेरा" भी नहीं कहता, परन्तु इस जाग्रत के शरीर से हर रोज़ धोका खाने पर भी इसको "मेरा" ही नहीं, "अपना आप" कहता हूँ, बल्कि इसके सुख में सुखी और इसके दुःख में दुःखी होता हूं। यह उदारता है ! या अन्याय ! या अज्ञान !

कितना खेद है कि इतनी प्रत्यक्ष बात के लिए हम

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को प्रमाणों की आवश्यकता हो ! और "मैं शरीर नहीं" इसके लिए युक्तियां ढूंढना पड़ें ! उपरोक्त प्रबल युक्ति के अतिरिक्त कुछेक अन्य युक्तियां यह हैं :-

(१) यह शरीर अपने उत्पन्न होने से पहिले नहीं था, और मरने के बाद नहीं रहेगा, परन्तु मैं सदा रहने वाला हूँ, इस लिए मैं यह शरीर (अन्नयमय कोश) नहीं।

(२) यह शरीर हाथ, पांओं आदि का संघात हैं, हाथों के कट जाने पर, पांओं या टांगों के कट जाने पर या आंखों, कानों आदि की शक्ति नष्ट हो जाने पर भी मै नष्ट नहीं होता, इस लिए मैं शरीर नहीं हूँ।

(३) मैं चेतन हूं, संसार की अच्छी बुरी वस्तुओं को जानता हूँ। परन्तु यह शरीर जड़ है, इस लिए मैं शरीर नहीं हूं।

(४) यह शरीर लहू, हड्डी, मांस, मल, मूत्र, आदि अशुद्ध और अपवित्र वस्तुओं का समूह है। परन्तु मैं नित्य शुद्ध हूँ, इस लिए मैं शरीर नहीं हूँ।

(५) जिस प्रकार शरीर पर धारण किया हुआ कोट शरीर नहीं है, अथवा बादाम का छिल्का बादांम रोग़न नहीं है, अथवा खद्दर का मैला कुचैला कपड़ा हीरा नहीं है। इसी प्रकार मैं शरीर नहीं हूं।

(६) इस शरीर की छाया को मैं अपना आप नहीं मानता। शीशे में आए हुए इस शरीर के प्रतिबिम्ब को (जो किसी सूरत में इस शरीर से कम नहीं), अथवा स्वप्न

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में रचे हुए शरीर को (जो बिल्कुल इसी शरीर जैसा है) मैं "मैं" नहीं कहता, फिर इस शरीर में बिशेष आसक्त होना, और इसको अपना आप समझना मेरी बड़ी भूल है।

(७) मल भी तो अन्न का कार्य है, उसको तो मैं "मैं" नहीं कहता, यह शरीर भी तो अन्न का ही कार्य है, उसको बड़ी शान से "मैं" कहता हूं ! "ब ईं अक्लो दानिश बबायद ग्रीस्त !!"

पता नहीं मेरी अक्ल में भूसा भरा था, या पत्थर भरे थे ! ऐसी भूल तो एक छोटा सा बच्चा भी नहीं करेगा !! शराब में बदमस्त, बल्कि पागल से पागल भी ऐसी भूल तो नहीं करेगा !!! अफ़सोस कितना भूला रहा मैं इस समय तक !!!! यदि मुझे अपने स्वरूप का पता नहीं भी था, तो भी शरीर को अपना आप समझने की हमाकत करना भी तो पर्ले दर्जे की मेरी नासमझी थी !!!!! ख़ैर, "गुज़श्ता रा सल्वात, वा आइन्दा रा एतिहात्," अब आइन्दा एतिहात रखूंगा। अब मैं सावधान हो गया हूं। यह शरीर मैं नहीं, तो वास्तव में मैं हूं क्या, इसका पता लगाए बग़ैर अब चैन से नहीं बैठूंगा॥

(२) **प्राणमय कोश** :- प्राण और पांच **कर्म-इन्द्रियाँ** (हाथ, पाओं, बाणी, मल-इन्द्रिय और मूत्र-इन्द्रिय) यह मिलकर प्राणमय कोश कहलाते हैं। प्राणों की शक्ति से ही यह कर्म-इन्द्रियां कर्मों में प्रवृत होती हैं। शरीर कर्म-इन्द्रियों और ज्ञान-इन्द्रियों का संघात है। जब मुझे यह निश्चय हो गया कि मैं शरीर नहीं, तो कर्म-इन्द्रिय

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मैं नहीं हूं, यह as a corrolary स्वमेव ही निर्विवाद तौर पर सिद्ध हो जाता है, क्योंकि यह उसी शरीर का अंश मात्र ही हैं। प्राण भी मैं नहीं, क्योंकि :-

(१) प्राण वायु का विकार है	(१) मैं निर्विकार (Changeless) हूं।
(२) प्राण शरीरसे बाहिर आता और जाता है	(२) मैं व्यापक हूं, आना जाना नहीं।
(३) प्राण जड़ है, अपने आप को या अपने इष्ट अनिष्ट को नहीं जानता।	(३) मैं चेतन हूं, स्वयं-प्रकाश हूं। प्राण में जो कर्म-इन्द्रियों को चलाने की शक्ति है, वह उसकी अपनी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। मेरी ही चेतन शक्ति से वह शक्तिमान हो जाता है।

(३) **मनोमय कोश** :- मन और पांच **ज्ञान-इद्रियां** (आँख, नाक, कान, रसना, त्वचा) यह मिलकर मनोमय कोश कहलाते हैं। शरीर रूप संघात का अंश होने से ज्ञान इन्द्रियां भी मैं नहीं हूं ॥ प्राणमय कोश को मैं ने कभी इतना महत्त्व नहीं दिया। शरीर को भी अपना स्वरूप समझता रहा, परन्तु मन को तो अपने से भी ज़्यादा शक्तिशाली समझता रहा, बल्कि practically उसके आधीन ही रहा। जैसे २ ही नाच यह नचाता, मैं वैसे ही नाचा किया।

इसमें संदेह नहीं, कि मन बड़ा शक्ति शाली है। मन ही अविद्या है, मन ही माया है, मन ही बन्धन का

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हेतु है, मन ही मोक्ष का हेतु है, मन ही संसार है, मन ही खेल है, मन ही खिलाड़ी है, मन ही चोर हैं, मन ही साध है, मन ही देश है, मन ही काल है, मन ही वस्तु है, मन ही मन है, मन ही चित्त है, मन ही बुद्धि है, मन ही अहंकार हैं, और लीन होकर फिर यही मन ही ईश्वर और ब्रह्म है।"

"जाग्रत और स्वप्न में एक क्षण में यह यहां है, तो दूसरे क्षण में कलकत्ते, और तीसरे क्षण में सातों समुद्र पार कर के यह अमैरिका जा पहुँचता है।

नोट :- आंख, नाक, कान, इत्यादि की अन्तर शक्ति का नाम ज्ञान-इन्द्रिय है, गोलकों का नहीं।

वेद ने इसकी शक्तियों की मुक्तकंठ से प्रशंसा है, कि "यह सर्व ज्योतियों में एक ज्योति है। इस मन के बिना कोई कर्म हो ही नहीं सकता। वर्तमान, भूत और भविष्यत तीनों कालों का इसको ज्ञान है। यह अमृत है। ऋक यजु और साम सब वेद इसी मन ही में प्रतिष्ठित हैं। मन का निवास-स्थान भी ठीक वही हृदय है, जो ईश्वर का है

हमें ईश्वर के सर्व शक्तिमान होने में संशय होता था, और हम यह कुतर्क उपस्थित करते थे कि "यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुं समर्थ हैं, तो क्या वह अपने जैसा दूसरा ईश्वर बना सकता है?" परन्तु ईश्वर तो ईश्वर रहा, यह मन भी इतना शक्तिशाली है, कि अपने जैसा दूसरा मनुष्य ही नहीं, बल्कि (स्वप्न में) अपने माता पिता को भी रच

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेता है, बल्कि सृष्टि की रचना करने वाले ईश्वर की भी रचना कर डालता है।

मन की इन अद्भुत शक्तियों के कारण मुझ पर इसका रोब छाया रहा, और Inferiority Complex में पड़ कर मैं इसका दास बना रहा, और एक मिन्ट के लिए भी यह विचार न किया, कि यह तो जड़ है। मेरी शक्ति को लेकर यह चेतन सा हुआ, और मुझ पर ही हाथ साफ़ करने लगा। एक नहीं, दो नहीं, (सत्त्व, रज, तम की) तीन ज़न्जीरों से मुझे जकड़े रखा। "बिल्यों शेर बणाया, शेर खावण आया!" जूता भी मेरा, और सिर भी मेरा! क्या खूब!

परन्तु इसमें इस बेचारे का क्या कसूर! यदि एक राजा स्वयं ही शराब पी कर बदमस्त पड़ा रहे, और चौकीदार से उसकी वर्दी और बन्दूक लेकर स्वयं पहरादार का काम करने लग जाए, और पहरादार को अपना ताज पहना दे, तो उस राजा की दुर्गति होने पर अचम्भा ही क्या है! "ख़ुद-कर्दा रा दिर्माने चीस्त!" मैं स्वयं ही तो अज्ञान की शराब पीकर बदमस्त हुआ २ अपनी सारी शक्ति इस मन के हवाले कर के स्वयं दीन हीन बन कर इसके आधीन हो कर रहने लगा। सुख दुःख इसका, समझने लगा मैं अपना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, द्वेष, धर्म थे इसके, लाद लिए मैं ने अपनी पीठ पर! मुझे क्या पता था कि (अज्ञान की) शराब इतनी बेपीर चीज़ है! मैं ने तो इसे "बहु स्याम" का मज़्ज़ा लेने के लिए मंह लगाया था। शुक्र है, और कोटिशः धन्यवाद है

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री गुरु राज जी का, कि जिन्हों ने अपनी निस्वार्थ कृपा से मेरे वास्तविक स्वरूप की उपदेश-रूप खटाई खिला कर मेरे इस नश्शे को तुड़ा दिया है। अब मैं सावधान हो गया हूं, और खोई हुई समृति मुझे फिर प्राप्त हो गई है। अब मैं समझ गया हूं, कि जिन धर्मों को मैंने अपना रखा है, वह मेरे नहीं, वह तो मन के हैं। यह मन एक जड़ पदार्थ है। रेल्वे इन्जन हज़ारों मन माल से भरे हुए डब्बों को सैंकड़ों मीलों की दूरी पर ले जाता है ज़रूर, परन्तु स्वयं तो उसमें शक्ति एक इन्च भी उनको हिलाने की नहीं है। स्टीम की शक्ति को लेकर ही वह शक्तिमान होता है, और तभी इतना भारी काम करने में समर्थ होता है। इसी प्रकार मन भी ईश्वर तक के तुल्य काम करने में समर्थ होता है ज़रूर, परन्तु यह सामर्थ्य इसको मेरी ही दी हुई तो है। वरना यह बेचारा तो जड़ है, इसमें सामर्थ्य कहां !

(४) **विज्ञानमय कोश** :- बुद्धि और उपरोक्त ज्ञान-इन्द्रियां मिलकर विज्ञानमय कोश कहलाते हैं। मन तो दोग़ला है, वाह्य करण भी है, अन्तः करण भी है। वास्तविक अन्तः करण तो बुद्धि है। मन संशयात्मक है, निश्चय-आत्मक तो बुद्धि ही है। पांओं में काँटा चुभ जाए, तो ज्ञान इन्द्रियां फ़ौरन मन तक यह (कांटा चुभने का) समाचार पहुँचाती हैं, मन बुद्धि को पहुँचाता है, और बुद्धि निश्चय कर के आदेश देती है, कि "कांटा निकाल दिया जाए"। यह आदेश Through proper Channel (मन के सकाश से) हाथों को भेजा जाता है, और हाथ काँटा निकाल बाहिर फैंकता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस शरीर रूपी रथ को दस इन्द्रियां रूप घोड़े खैंचते हैं। मन इन घोड़ों की लगाम है। वास्तव में इस रथ को चलाने वाला सारथी यह बुद्धि है, मन रूप लगाम भी इसी के हाथ में रहती है।

यह बुद्धि ही कर्मों की कर्ता, और उनके फलों की भोक्ता है। यह विज्ञानमय कोश ही भिन्न २ योनियों में भ्रमण करता हुआ कभी नीच योनियों में जाता है, कभी ऊपर की योनियों में। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति, सुख दुःख आदि भोग, गुणों का अभिमान इत्यादि इसी विज्ञानमय कोश में रहते हैं। अहंता और ममता भी इसी के धर्म हैं। चूंकि बुद्धि "मेरे" (आत्मा के) निकट रहती है, इस लिए मैं (अज्ञान के कारण) इसको अपना आप समझ बैठा। कर्ता, भोक्ता तो है यह, समझ मैं अपने आप को बैठा। अब होश में आ गया हूं, और समझने लगा हूं, कि विज्ञानमय कोश मैं नहीं, क्योंकि :-

(१) बुद्धि विकारी है।	(१) मैं निर्विकार हूं।
(२) ,, परिछिन्न है।	(२) मैं व्यापक हूं।
(३) ,, जड़ है।	(३) मैं चेतन हूं।
(४) ,, दृष्य है।	(४) मैं द्रष्टा हूँ।
(५) ,, व्यभिचारिणी है।	(५) मैं एक रस हूं।

(५) आनन्दमय कोश :- "मेरे" "प्रतिबिम्ब से चुम्बित तथा तमोगुण से प्रकट हुई वृत्ति" आनन्दमय कोश कहलाती है। इष्ट वस्तु की प्राप्ति पर जब वृत्ति शान्त हो जाती है, तो उस समय आनन्द का भान होता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जगदीश्वर* दत्त तीन वर्षों से जयपुर में है। उसका पत्र आया कि "Transfer हो गई है, सोमवार पहुँच जाऊंगा" यह "**प्रिय**" समाचार पढ़ कर बुद्धि की वृत्ति पुत्र को मिलने की उत्कंठा से चंचल हो उठी। सोमवार आने पर "लड़का आज आएगा" इस "**मोद**" के कारण वृत्ति में चंचलता और ज़्यादा बढ़ गई। लो, "उस की मोटर आ गई," यह सुनते ही "**प्रमोद**" के कारण वृत्ति की चंचलता आख़री सीमा तक पहुँच गई। ज्यूंहि लड़का आकर मिला, वृत्ति शान्त हो गई। चंचलता हट जाने से आनन्द का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ने लगा, और बड़ी प्रसन्नता का अनुभव होने लगा। यह आनन्द का अनुभव कुछ ही समय के लिए होता है। फिर वृत्ति दूसरे कामों, वस्तुओं, अथवा विचारों में उलझ कर अशान्त और चंचल हो जाती है, जिस से उस प्रसन्नता या आनन्द का भान होना रुक जाता है।

इस आनन्दमय कोश की तीव्र प्रतीति सुषुप्ति में होती है, क्योंकि उस अवस्था में बुद्धि अज्ञान में लीन हो जाती है, इस लिए उस से कोई वृत्ति उठ ही नहीं सकती, अर्थात उस समय बुद्धि स्थिर होती है, और "मेरे" (आत्मा के, आनन्द के) प्रतिबिम्ब को ग्रहण कर लेती है। इसी लिए सुषुप्ति अवस्था में हमें आनन्द की प्रतीति होती है। यद्यपि अज्ञान में लीन होने के कारण उस समय यह कुछ बता नहीं सकती। जागने पर ही हम कहते हैं, कि "रात को खूब नींद आई! बड़ा ही आनन्द आया! छः घन्टे गुज़र गए, परन्तु मालूम ऐसा होता है

*लेखक का बड़ा लड़का।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि अभी सोया था ! होश ही नहीं रहा !"

यह आनन्दमय काश "मेरे" (आत्मा के) अतीव ही निकट है, और इसकी प्रतीति सुषुप्ति में स्पष्टता से होती है, इस लिए सुषुप्ति अवस्था जाग्रत अवस्था की अपेक्षा भी ज़्यादा वास्तविक है। जाग्रत में दिन भर काम करने से शरीर थक जाता है, थकावट के कारण दमाग़ भी ज़्यादा काम करने से जवाब दे देता है। सुषुप्ति में जाने पर फिर तरो-ताज़ा हो जाता है, थकावट जाती रहती है, शरीर और दमाग़ में फिर नए सिरे से काम करने की स्फुर्ती आ जाती है। यदि दो चार दिन नींद न आए, तो शरीर टूटता सा है, आंखें फूल कर लाल हो जाती हैं, दिल धड़कने लगता है, कमज़ोरी इतनी हो जाती है, कि बिस्तर से हिला ही नहीं जा सकता। जिन चीज़ों को खाने में बड़ी खुशी होती थी, उनके ही सामने आने पर उन से ऊब आती है। बल्कि, बड़ी मन्नतों से वृद्ध अवस्था में प्राप्त हुए हुए नवजात बच्चे को (जिसकी क्षणमात्र की जुदाई भी गवारा नहीं थी) अपने से दूर हटाता हूं, और यही कहता हूं, कि "बस, अब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। मुझे तो सोने ही दो" नींद में अपने आप में लीन हाने के बाद शरीर नया नवेल हो गया। न दिल की धड़कन बाकी रही, और न ही कमज़ोरी का कहीं नामो निशान बाकी रहा। यह बर्कत आनन्दमय कोश की है।

इस आनन्दमय कोश की चकाचौंध में इसी को ही

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मैं अपना आप समझने लग पड़ा। यह न समझा कि यह तो मेरा प्रतिबिम्ब ही है। अपनी छाया को या शीशे में पड़ते हुए अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को एक अनजान बालक भी अपना आप नहीं मानेगा। कितनी भूल थी मेरी! सच मुच इन भूलों के कारण सिर शरम से झुका जा रहा है!

प्रश्न ४७— पांच ही तो कोश गिनाए गए, और एक एक कर के उन पांचों का ही निराकरण कर दिया है, बाकी तो कुछ बचा ही नहीं। तो क्या मैं कुछ हों ही नहीं? क्या शून्य ही आत्मा है?

उत्तर— यह तो ठीक है, कि **"नेति, नेति"** का वादक युक्ति से पांचों कोशों का निरास हो चुका है, इन मे से एक भी मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। परन्तु जो यह कहता है कि "बाकी कुछ बचा ही नहीं," वह कहने वाला तो बाकी है। उसका तो निकारण नहीं हुआ, और न हो सकता है। वह मौजूद है, तभी तो उसे शंका उठी है; कि "क्या मैं कुछ हों ही नहीं?" यही "क्या मैं कुछ हों ही नहीं" कहने वाला ही तो "मैं" (आत्मा) हूँ। वह मैं शून्य नहीं हो सकता, बल्कि:-

मैं सत् स्वरूप हूं— अन्नमय कोश को मैं अपना आप समझता था, तब भो मैं मौजूद था, यदि न होता, तो "मैं शरीर हूं" ऐसा कहता कैसे? और अब अन्नमय कोश आदि नहीं रहें, तो भी मैं मौजूद हूं, यदि न होता तो "मैं अन्नमय आदि कोश नहीं हूं," ऐसा कहता कैसे?

Digitized by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मैं चित स्वरूप हूँ-- क्योंकि यदि मैं जड़ होता, तो मैं यह जानता ही कैसे, कि मैं अन्नमय आदि कोश हूं, या यह कोश नहीं हूँ?"

मैं आनन्द स्वरूप हूं— क्योंकि यदि मैं ऐसा न होता, तो सुषुप्ति में, जब कि मेरे सिवाए और कुछ होता ही नहीं, अन्तःकरण आनन्द के प्रतिबिम्ब से सम्पन्न होता ही कैसे ?

प्रश्न ४८— परन्तु यह क्या अचम्भा है, कि पुस्तक कलम, दवात, कुर्सी आदि बाहिर की वस्तुओं को मैं देख सकता हूँ, उन का मुझे ज्ञान है । हाथ, पांओं आदि शरीर के अव्यवों को भी मैं देख सकता हूँ, उनका का मुझे ज्ञान है । परन्तु अपने आप को, जो मेरा वास्तविक स्वरूप है, उसको न ही देख सकता हूं, न ही उस का ज्ञान है ?

उतर ४८— यह ठीक है, कि हम बाहिर की वस्तुओं को और शरीर के अव्यवों को आंखों से देख सकते हैं, परन्तु अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं देख सकते । परन्तु इस न देख सकने का कारण यह नहीं, कि मैं (आत्मा) हूँ ही नहीं । यह नियम ग़लत है, कि जिस चीज़ को हम देख नहीं सकते, वह है ही नहीं । चीज़ों के मौजूद होते हुए भी उन को न देख सकने के चार कारण हो सकते हैं:-
(१) या तो न दीख सकने वाली वस्तु हमारी आंखों के अति निकट है, जैसे आंखों में सुर्मा ।
(२) या उस वस्तु और हमारी आंखों के दर्म्यान कोई रुकावट हायल है । जैसे घर के एक कमरे मे खड़े

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुए हमको दूसरे कमरे में पड़ी हुई चीज़ें नहीं दीख सकतीं, क्योंकि उन चीज़ों और हमारी आँखों के दर्म्यान दीवारों की रुकावट है।

(३) या वह न दीख सकने वाली वस्तु बहुत ही सूक्ष्म है, जैसे हवा में मौजूद होते हुए भी मिट्टि और पानी के ज़र्रे, सूक्ष्म होने के कारण नहीं दीखते। (४) या बहुत ही दूरी भी इसका एक कारण हो सकती है।

अपने वास्तविक स्वरूप के दीख न सकने में दूरी का कारण तो घट नहीं सकता, क्योंकि "मैं" ही तो "मैं" हूं, वह मैं मुझ से दूर हो नहीं सकता। बाकी के तीन कारण इसमें घट सकते हैं :-

(१) अपना स्वरूप होने से "मैं" से मैं अतीव निकट हूं, उस से ज़्यादा निकट और कोई वस्तु नहीं हो सकती, इसी लिए दीखता नहीं है।

(२) "मेरे" और इन्द्रिय-मन-बुद्धि के दर्म्यान अज्ञान की रुकावट है, इसी लिए वह दीखता नहीं। और

(३) "मैं" (आत्मा) सूक्ष्माति-सूक्ष्म हूँ। अणु और प्रमाणु तो "मेरी" अपेक्षा कहीं स्थूल हैं। उन की सूक्ष्मता का मेरे साथ क्या मुकाबिला !

प्रश्न ४६— माना कि इन्द्रियों को आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता, परन्तु मन का तो वह विषय होना ही चाहिए, क्योंकि "मन का निवास स्थान वही है, जो आत्मा का है"। यदि मन को भी उसका ज्ञान न हो, तो फिर तो ज्ञान होना असम्भव है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर— बहुत ही उच्च प्रश्न है । यह प्रश्न ज़ाहिर करता है कि आप शरीर और इन्द्रियों से ऊपर उठ कर मन-बुद्धि के स्तर पर पहुँच गए हैं। बस, एक छलांग ही बाकी है। बुद्धि ही आख़री पड़ाओ है। इस से अगला पड़ाओ तो हमारा ध्येय स्थान है। प्रस्तुत प्रश्न के हल होते ही "हृदय की ग्रन्थि खुल जाएगी, और सब संशयों की एकदम निवृति हो जाएगी"।

स्वरूप के ज्ञान न होने का कारण यह नहीं कि मैं हूं ही नहीं । अपने होने में तो किसी को सशय हो नहीं सकता । शुक्र है कि हम अपने मनन में "आत्मा" शब्द के लिए "मैं" शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। यदि इस के लिए "वह" शब्द का प्रयोग करते, तो आत्मा के होने में भी संशय की उत्पत्ति हो सकती थी, और उसको निवारण करने में और ज़्यादा परिश्रम करना पड़ता। "मैं" शब्द के प्रयोग से जहां आत्मा की सत्ता स्वयमेव सिद्ध हो गई, वहां देह-भाव से उठकर क्षुद्र अहंकार को अपने वास्तविक अहंकार में लीन करने का अभ्यास भी स्वतः ही होता रहा। इसके फल स्वरूप अब जहां भी "मैं" शब्द का प्रयोग होगा, वहां उसका अर्थ शरीर नहीं, बल्कि अपना वास्तविक स्वरूप (आत्म) ही लेंगे ।

अस्तु, जैसा हम अभी विचार कर रहे थे, स्वरूप का ज्ञान न होने का कारण यह नहीं, कि "मैं" नहीं हूं, बल्कि इसका कारण यह है कि मेरे सिवाए मेरा कोई

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्य ज्ञाता नहीं है। ज्ञान तो किसी ज्ञेय वस्तु का ही हुआ करता है, और ज्ञेय वस्तु सब जड़ ही हुआ करती हैं। वह चेतन से जानी तो जाती है, परन्तु जड़ होने से दूसरी जड़ वस्तु को भी नहीं जान सकतीं, चेतन का जानना तो कहां रहा! यह पुस्तक ज्ञेय है, जड़ है। यह कलम ज्ञेय है, जड़ है। मैं ज्ञेय पुस्तक को जानता हूँ, इसलिए मैं पुस्तक का ज्ञाता हूँ। मैं ज्ञेय कलम को जानता हूं, इसलिए मैं कलम का ज्ञाता हूं (१) पुस्तक अपने आप को या कलम को नहीं जान सकती, वह मुझ जानने वाले को भला कैसे जान सकती है! (२) कलम अपने आप को या पुस्तक को नहीं जान सकती, वह मुझ जानने वाले को भला कैसे जान सकती है! (३) आंख तो दूर्बीन से दूर की चीज़ों को देख सकती है, परन्तु दूर्बीन को पलट कर उस से आँख को देखना चाहें, तो देखे कौन? क्या दूर्बीन आँख को देख सकती हैं? (४) सूर्य तो संसार भर की वस्तुओं को प्रकाश देता है, सूर्य को कौन प्रकाशित करे? क्या बिजली का लैम्प? या चराग़? या जुग्नू? (५) खांड ही तो सब चीज़ों को मीठा बनाती हैं, खांड को मीठा कौन बनाए? क्या बर्फी? लड्डू? या शक्कर बारे?

ठीक इसी प्रकार "मैं" (आत्मा) ही (एक मात्र चेतन होने से) मन, बुद्धि का ज्ञाता हूं, मेरा ज्ञाता कौन हो? क्या मन? बुद्धि? इन्द्रियाँ या शरीर? "ज्ञातारं अरे केन विजानियात्?" जानने वाला चेतन ही तो हो सकता है। जड़ पदार्थ थोड़ा जान सकते हैं! मन, बुद्धि जड़ ही तो

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है, भले ही वह मेरी (एकमात्र चेतन की) चेतनता को ले कर चेतन से हो रहे हैं। वह जड़ मन, बुद्धि "मुझ" (आत्मा) को विषय कैसे करें? खांड की मिठास को लेकर ही शक्करबारे मीठे से हो रहे हैं, वह शक्करबारे खांड को कैसे मीठा बनायें?

अब, रहा प्रश्न यह, कि मन, बुद्धि को भी यदि ज्ञान न हो सके, तो स्वरूप का ज्ञान होगा कैसे? इसका उत्तर यह है, कि जैसे हम को कमरे में के आकाश का ज्ञान होता है। यह पूच्छा जाने पर कि कमरे में आकाश को कैसे जानें, वह नज़र तो नहीं आता, उत्तर मिला कि कमरे की चारों दीवारों के अन्दर जो वस्तु है, वह आकाश है। परन्तु कमरे के अन्दर तो मेज़, कुर्सी, पलग, रेडियो-सेट, सौफ़ा, टेबल-फैन आदि हैं, क्या इनमें से कोई आकाश है? न। एक २ करके इन सब चीज़ों को कमरे से बाहिर निकाल दिया। अब कमरे की दीवारों के अन्दर बाकी जो कुछ बच रहा है, वह आकाश है। इसी प्रकार "नेति-नेति" अथवा "पंच कोश विवेक" की युक्ति से (जैसा कि ऊपर हम कर चुके हैं) मैं अन्नमय कोश (न+इति) नहीं हूं, प्राणमय कोश (न इति), मनोमय कोश नेति, विज्ञानमय कोश नेति, आनन्दमय कोश नेति।

जब शरीर के ऊपर के कपड़े, कोट, कमीज़, बन्यान आदि उतर गए, तो शरीर स्वयमेव ही तो शेष रहा। जब 'लाल' के उपर के ग़िलाफ़, खद्दर, पाप्लीन, करेब, साटन आदि हट गए, तो 'लाल' स्वयमेव ही तो शेष रहा। जब ऊपर का मुंज हट गया, तो ईशिका (सर्कंडा,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काना) स्वयमेव ही तो शेष रहा। इसी प्रकार जब पांचों कोशों का वाध हो गया, तो "मैं" (आत्मा) स्वयमेव ही तो शेष रहा।

(३) तीसरी युक्ति— जाग्रत में स्वप्नवत अवस्था (अर्थात पातंजल योग की परिभाषा में) "ध्यान"।

स्वरूप स्मृति की महारनी

चेतावनी—विस्मृत निज स्वरूप को फिर से स्मरण करने की यह महारनी केवल अपने लिए ही है। इस लिए इसका व्यक्तिगत रूप में, एकान्त में, गुप्त रीति से स्मरण करना ही परम आवश्यक है। मान लीजिए कि मैं अपना नाम भूल गया हूं। किसी सज्जन पुरुष ने मुझे मेरा नाम याद दिला दिया है, और बर-लवे चौक बैठ कर खूब ज़ोर से बार २ मैं रटता हूँ, "मैं प्रभुदत्त हूं," "मैं प्रभु दत्त हूँ," "मैं प्रभु दत्त हूँ", तो सुनने वालों को न केवल बुरा लगेगा, बल्कि उनमें से कोई मन्चला तो मुझे आगरा जाने वाली ट्रेन पर सवार कराने के लिए अपनी पाकेट से किराया खर्च कर के भी, टांगा अपनें साथ लेता ही आएगा। अपना नाम भूल जाना तो पागलपन का दौरा था ही, सब को सुना २ कर नाम को याद करना उस से भी शदीद दौरा है, और जा २ कर लोगों से कहते फिरना, कि "देखो, मैं तो प्रभुदत्त हूँ," इस दौरे की शदीद तरीं हालत है।

अपना स्वरूप हम भूल गए, क्या यह कम हमाकत थी! कि अब हम लोगों को सुना २ कर, "शिवोऽहम्,"

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कह कर उसमें और ज़्यादती कर के संसार में पाखंड और मिथ्याचार को और बढ़ायें ! इस लिए इस विषय में सावधान रहने की चेतावनी पर जितना भी बल दिया जाए, थोड़ा है।

ध्येय:- "नेति, नेति" की उपरोक्त युक्ति से शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का बाध तो हो गया, अर्थात यह तो निश्चय हो गया कि भूल के कारण मैं अपने आप को जो कुछ समझ रहा था, वास्तव में वह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है, वह भूल तो उपरोक्त युक्ति से दूर हो गई। परन्तु मेरा वास्तविक स्वरूप है क्या, इसका पता उससे भी नहीं लगा। इस के लिए गुरुजनों ने कई निशानियां बताई हैं, उनको रट रट कर अपने विस्मृत स्वरूप की पुनः स्मृति कराना इस युक्ति का ध्येय है।

विधि:- जिस तरह स्वप्न अवस्था में हमारा शरीर तो मुर्दे की तरह चारपाई पर पड़ा हुआ होता है, और केवल मन से ही हम स्वप्न के सब व्यापार करते हैं, उसी प्रकार अपने ध्यान-आसन (पद्मासन, या सिद्धासन या सुखासन)पर स्वस्थ बैठ कर अपने शरीर को चारपाई पर मुर्दे की तरह लेटा हुआ अनुभव करो (केवल भाव से ही, Actually लेट नहीं जाना) और अपने आप को शरीर से बिल्कुल अलग करके बुद्धि के स्तर पर आ कर (साक्षी रूप में) मन को भी अपने से अलग कर के, उस को अपने सामने बैठा हुआ अनुभव करो, और मन को आदेश करो, कि आपकी (बुद्धि रूप में साक्षी की) अध्यक्षता में अपने वास्तविक स्वरूप की स्मृति की निम्न महारनी बार २ रटे।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सावधान (१) महारनी के रटने की आवाज़ बाहिर न आए। (२) होंट न हिलें। (३) ज़बान मुंह के अन्दर भी न हिले। (४) आंखें बन्द हूं। (५) कान बाहिर की आवाज़ों की ओर न जाएं। (६) हाथ, पाओं या शरीर का कोई अंग हिले जुले नहीं।

"ध्यान," स्वरूप-स्मृति की महारनी ॥

"मैं असंग हूं, अक्षय हूं, तथा अत्यन्त शान्त, अनन्त और पुरातन हूं। मैं अकर्ता हूं, अभोक्ता हूँ, अविकारी हूं, तथा शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव हूँ। मैं एक हूं, तथा नित्य कल्याण स्वरूप हूं। मैं स्थूल और सूक्ष्म जगत का प्रकाशक हूं। मैं पूर्ण और अद्वितीय हूं। मैं परम पुरुष हूं, सबका साक्षी हूं, स्वतन्त्र हूँ, तथा अहंता ममता से रहित हूं। मैं निर्लेप हूँ, निश्चल हूं, और अपार हूं। मैं सब का आत्म-स्वरूप, सर्वरूप, और निरन्तर आनन्द स्वरूप हूं।"

"मैं शरीर नहीं हूं। इन्द्रियां मैं नहीं हूँ, न ही मैं मन, बुद्धि, चित्त या अहंकार हूं। मैं जन्म नहीं लेता, न ही मैं मरता हूं। मैं बालक नहीं, जवान नहीं, न ही बूढ़ा होता हूं। वर्तमान, भूत, भविष्यत तीनों कालों से परे हूँ। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं से दूर हुँ। सत, रज, तम तीनों गुणों से अतीत हूं, सुख दुःख, शीतोष्ण हानि लाभ, जय प्राजय, आदि द्वन्द्वों से रहित हूं। मैं क्रिया-रहित तथा विकार-रहित हूं। मैं निराकार, निर्विकल्प, तथा निरालम्ब हूं। "तू," "मैं," "यह," "वह" आदि

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की कल्पना से मैं अत्यन्त दूर हूँ।"

"जैसे आकाश और बादल का कोई सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही शरीर से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे व्यापक और पूर्ण होने से आकाश में कोई चेष्टा नहीं, वैसे ही चेष्टा रहित मैं सदा अपनी महिमा में स्थित हूं। जैसे घर को प्रकाशित करने वाले दीपक पर घर की सुन्दरता या मलिनता का कोई प्रभाव नहीं होता, वैसे ही शरीर आदि दृष्य पदार्थों के धर्म मुझे छू तक नहीं गए।"

"जैसे सूर्य मनुष्यों के कर्मों का साक्षी मात्र है, उनसे लिपायमान नहीं होता, वैसे ही मैं कूटस्थ चेतन विषयों का साक्षी मात्र हूं, उनसे लिपायमान नहीं होता।"

"अव्यक्त से लेकर स्थूल भूत पर्यन्त यह समस्त विश्व जिसमें आभासमात्र प्रतीत होता है, तथा जो आकाश के समान सूक्ष्म, और आदि अन्त से रहित अद्वैत ब्रह्म है, वही मैं हूं, मेरा अस्तित्व उससे भिन्न कोई भी नहीं है। जो सब का आधार, सब बस्तुओं का प्रकाशक, सर्व व्यापी नित्य-शुद्ध, निश्चल और विकल्परहित अद्वैत ब्रह्म है, वही मैं हूं, मेरा अस्तित्व उस से भिन्न कोई भी नहीं है। जो समस्त मायिक भेदों से रहित, अन्तर-आत्मा और साक्षात-प्रतीति का अविशय है, तथा अनन्त सच्चिदानन्द अद्वैत ब्रह्म है, वही मैं हूं, मेरा अस्तित्व उस से भिन्न कोई भी नहीं है"॥

(४) चौथी युक्ति— आत्म निरीक्षण

ध्येय :- "ध्यान" के अभ्यास में बाधक वृत्तियों का

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निरास ।

विधि:- जिस प्रकार फ़ौज की ड्रिल खतम हो जाने के बाद सेना- नायक अपनी फ़ौज को, Salute लेने के एक ऊंचे प्लैटफ़ार्म पर खड़े हुए, सेना-पति के आगे से March Past कराता है, इसी प्रकार यदि और जब भी मन की कोई वृत्ति साधन में विघ्न डालने लगे, अर्थात पहिली तीन युक्तियों में प्रस्तुत विषय से भिन्न कोई विचार आए, या पांचवी युक्ति के अभ्यास में (जहां किसी विचार की उत्पत्ति नहीं होनी चाहिए) कोई भी विचार उत्पन्न हो, तो तत्काल ही अपने आप को बुद्धि के स्तर पर रखकर सेनापति के रूप में मन को आदेश दें, कि अपनी (विचारों और वृत्तियों की) सेना को आगे ले आए। ऐसा आदेश मिलने पर मन में एक भी विचार उत्पन्न नहीं होगा। यदि कोई विचार आए भी, तो फिर आदेश दिया जाए, "अच्छा, चलो, चलो आगे" । बस, और विचार कोई भी नहीं आएगा ।

चेतावनी:- यदि सेनापति अपनी जगह पर स्थिरता पूर्वक, पूरी सावधानी से, और पूरे तौर पर Alert रहे, तब तो फ़ौज का हर एक सिपाही भी पूरे Discipline में मार्च करता है, और "Halt" के आदेश पर तुरन्त ही ठहर जाता है। परन्तु यदि सेनापति ही स्वयं फ़ौज का सिपाही बनकर फ़ौज के साथ चल दे, या अपनी जगह पर खड़ा न रह कर इधर उधर चलता रहे, या अपनी जगह पर खड़ा हुआ भी फ़ौज के Salute का प्रत्युत्तर देने में असावधानी बर्तें, तो सिपाही भी अपनी मनमानी चाल चलना शुरु

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर देते हैं । इसी प्रकार बुद्धि के स्तर पर खड़े हुए हम यदि मन के विचारों की फ़ौज के साथ ही चल पड़ते हैं, या पूरी सावधानी से उन विचारों का निरीक्षण नहीं करते, तब तो हम धोका खा जाएंगे, और आन की आन में अपने आप को विचारों की फ़ौज से घिरा हुआ पाएंगे ! इस लिये तलवार की नोक पर चलने की सी सावधानी अभ्यास के समय परम आवश्यक है ।

पांचवीं युक्तिः- **जाग्रत में सुषुप्ति अवस्था** (अर्थात पातंयोग की परिभाषा में) **समाधि** ।

आत्म-साक्षात्कार

ध्येय— सत्, चित्त, आनन्द स्वरूप "मैं" (आत्मा) अज्ञान के अन्धकार के कारण आनन्द स्वरूपता से भटक कर पथ-भ्रष्ट हो गया हूं । कभी शरीर में उस आनन्द का गुमान कर बैठता हूँ, कभी विषयों में किंचिन्मात्र सुख को देख कर उसी सुख को आनन्द समझने लग जाता हूँ । कभी स्त्री, पुत्र, धन, भूमि, मकान दुकान आदि वस्तुओं में निज स्वरूप (आनन्द) का भुलावा हो जाता है । बड़ा मार्का मारा, तो मन, बुद्धि तक पहुँच पाया । परन्तु हर जगह धोका ही खाया । जैसे "छुपन छोत" का खेल खेलने में छुपा खिलाड़ी आवाज़ एक जगह से देता है, और तुरन्त ही भाग कर छुप कहीं दूसरी जगह पर जाता है । ढूंढने वाला खिलाड़ी आवाज़ के पीछे भागता है, परन्तु वहां पहुँच कर धोका ही खाता है । कभी २ छुपने वाला खिलाड़ी उसकी आंखों के सामने प्रगट तो एक क्षण के लिए हो जाता है, परन्तु पकड़ाई नहीं देता । इसी प्रकार सुषुप्ति में वह **आनन्द** प्रगट तो

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो जाता है, परन्तु हाथों हाथों ही निकल जाता है।

इसी लिए तो वसिष्ठ मुनि ने राम जी को उपदेश देते हुए कहा, "हे राम जी, उस **निजानन्द** रूप **परम गति** को प्राप्त करने के लिए जाग्रत में भी सुषुप्तिवत अवस्था को प्राप्त करा"। उसी परम गति का संकेत यम ने नचिकेता को किया कि:-

"यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति, तमाहुः **परमां गतिम**"॥ (कठ०२-३-१०)

अर्थात वह अवस्था जब कि पांचों ज्ञान इन्द्रियाँ, मन सहित स्थिर हो जाती हैं, और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती, उस अवस्था को ही **परम गति** कहा जाता है, और उसी परम गति का नाम पतंजलि मुनि ने **समाधि** रखा है, जिसकी परिभाषा वह यों करते हैं :-

"तदेवार्थमात्र निर्भासं, स्वरूप शून्यमिव समाधिः"

अर्थात ध्यान की वह परिपक्व अवस्था, जब कि केवल अर्थ (अर्थात ध्येय, उपास्य) का ही भान शेष रह जाता है, ध्याता और ध्यान इत्यादि का रूप शून्य सा हो जाता है, समाधि कहलाती है।

विधिः- सुषुप्ति उस अवस्था का नाम है, जब कि यह प्रतीति नहीं रहती कि "यह मैं हूं," "यह नींद की क्रिया है," और "मैं इस क्रिया का कर्ता हूं" या "मैं सुषुप्ति अवस्था में हूं"। अर्थात संसार की वस्तुओं, क्रियाओं और

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विचारों की उस समय किंचिन्मात्र भी प्रतीति नहीं होती। परन्तु सुषुप्ति तमोगुणी अवस्था है। उस से हम को आध्यात्मक प्रगति के लिए कोई लाभ नहीं होता, इस लिए निज पुरुषार्थ रूप रजोगुण से वैसी सुषुप्ति वाली अवस्था जाग्रत में (समाधि रूप में) प्राप्त करनी है।

तीसरी युक्ति में हम ने बुद्धि के स्तर पर ऐसा ध्यान किया था कि "मैं असग हूँ, मैं शरीर आदि नहीं हूं" इत्यादि इत्यादि, और आखिर में "जो सच्चिदानन्द अद्वैत ब्रह्म है, वही मैं हूँ"। उस ध्यान में बुद्धि या अहंकार की वृत्ति शेष थी, तभी तो "मैं" ऐसा एक व्यक्तित्व सच्चिदानन्द से पृथक ध्याता के रूप में था। अब मौजूदा युक्ति में मन-चित्त-बुद्धि-अहंकार रूप सूक्ष्म शरीर को वैसे ही सोया हुआ अनुभव करें, जैसे तीसरी-युक्ति में स्थूल शरीर को। सूक्ष्म शरीर के न रहने पर (सो गया हुआ अनुभव करने पर) "मैं" इत्यादि रूप ध्यान करने वाला कोई नहीं रहा। सुषुप्ति की सी हालत में हम पहुँच गए। फ़र्क केवल इतना है, कि सुषुप्ति में अज्ञान का पर्दा मौजूद रहने के कारण आनन्द का भान केवल imperceptibly होता था, जिस का बयान जाग्रत में आकर हम कर सकते हैं। परन्तु अब न केवल अनुभव हो रहा है, बल्कि उस अनुभव का ज्ञान भी है। परन्तु अब इस आनन्द को अपने से भिन्न अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि भेद डालने वाला "अहंकार" अब है ही नहीं। उसी अहंकार ने ही तो हमारा सारा काम इस समय तक चौपट कर रखा था। उसके न रहने पर अब हम

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आनन्द में मिलकर **आनन्द स्वरूप** हो गए हैं। गंगा पहाड़ों पर शां शां करती हुई अतीव रजोगुण के कारण मुंह से झागें निकालती हुई, और रास्ते में आने वाले दरख़तों, मकानों और चट्टानों को अहंकार और अभिमान से जड़ से उखाड़ती हुई भी अन्त में बड़ी शान्ति से, सात्त्विक भाव से, समुद्र में प्रवेश कर लेती है। प्रवेश कर लेने के बाद वह गंगा नहीं रहती। समुद्र से मिल कर उसके नाम, रूप, गुण, कर्म, स्वभाव "समुद्र के से" हो जाते हैं, नदी वाले नाम, रूप, गुण, कर्म, स्वभाव सब मिट जाते हैं। बल्कि "समुद्र के से" कहना भी ग़लती है, समुद्र से भिन्न गंगा नदी कहीं रही हो, तो "समुद्र के से" कहा जाए!

आनन्द के अनुभव का बखान अब कौन करे! कहने वाली इन्द्रियां और मन, बुद्धि, चित, अहंकार की चंडाल चौकड़ी तो सो गई!! बस, चुप !!! गुम !!!!

उत्थान काल में विदेह जी के यह लफ्ज़ गूंजते हुए ज़रूर सुनाई देंगे :-

"पर्दा उठा लिया, मुझे जल्वा दिखा दिया।
ज्योति को मेरी, ज्योति में अपनी मिला लिया॥"

सावधान— एकाग्रता के कारण सुने जाने वाले अन्तर के नादों, रंगों और प्रकाशों में अटक नहीं जाना है। उनकी उपेक्षा ही करके आगे चलते जाना चाहिए, जब तक वास्तविक स्वरूप, आनन्द, की प्राप्ति नहीं हो जाती।

(२) यदि और जब भी कोई सिद्धि आ कर मिलने

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का यत्न करे, तो उस से निर्दयता पूर्वक आंख माड़ लेनी चाहिए। "सिद्धि का प्रयोग केवल परोपकार में ही करेंगे, किसी बुराई के लिए नहीं" ऐसा विचार भी बड़ा भयानक है, जो साधक को गिरा कर मदारी और पाखंडी के स्तर पर लाकर ही दम लेगा।

(३) इस युक्ति के अभ्यास में समय को बहुत धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए। अभ्यास में बैठने से पहिले ही समय निश्चय कर लेना चाहिए, कि "१५ मिन्ट या २० मिन्ट अभ्यास करूंगा" ऐसा निश्चय कर लेने से प्राण (जो एकाग्रता के कारण रुक जाता है) निश्चित समय गुज़रने के बाद चालू हो जाएगा। इस युक्ति को आरम्भ करने के एक दो साल तक आधा घन्टा से ज़्यादा इस अभ्यास को नहीं बढ़ाना चाहिए।

(६) छटी युक्तिः- स्व स्वरुप का वाह्य अनुभव

ध्येयः- जिस चेतन आत्मा का साक्षात्कार पिछली पांचवी युक्ति में अभ्यास के समय किया, वह सच्चिदानन्द केवल समाधि के एक, दो या तीन घन्टे ही तो विद्यमान नहीं होता। वह तो हर समय ही मौजूद है। उसका अनुभव केवल चौकड़ी लगा कर बैठने और आंखें मूंद कर विचारों को स्थगित करने वाले स्थान पर ही तो सीमित नहीं। वह तो हर एक स्थान पर व्यापक है। हर एक वस्तु के अणु अणु और प्रमाणु प्रमाणु में उसकी सत्ता मौजूद है। बल्कि उसकी सत्ता के कारण ही हर एक वस्तु की सत्ता है, बल्कि वस्तु की सत्ता (बरफ़

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की तरह) है ही नहीं। (पानी की तरह) "मेरी" (आत्मा की, सच्चिदानन्द की) सत्ता मात्र ही है, इस तथ्य का उत्थान काल में अनुभव करना।

विधि:- "यत्र यत्र मनो याति, तत्र तत्र समाधय:।" जहां जहां, जिस २ वस्तु का ज्ञान हो, उस वस्तु की उपेक्षा कर के, उस वस्तु, मनुष्य, पशु, पक्षी में निहित सत्ता ,चेतनता और आनन्दता का अनुभव इस प्रकार करना है :-

चेतनता का अनुभव—(१) मिल (mill) के एक कमरे की छत मे एक सीटी (whistle) लगी हुई है, उस के ऊपर एक ढकना सा है, जिस के साथ ज़न्जीर बन्धी हुई है। इस ज़जीर को नीचे खींचने से ढकना खुल जाता है, उसमें से स्टीम बाहिर निकलती है। जिस से विसल होती है। जब तक ज़न्जीर को खींचा न जाए, वह जड़ विसल अपने आप कभी नहीं बजेगी। जब विसल हो रही हो, तो यद्यपि मिल के विसल वाले कमरे में ज़न्जीर को खींचता हुआ आदमी नज़र नहीं आ रहा है, तो भी निश्चय से हम अनुभव करते हैं, कि विसल के पीछे (आदमी की) चेतन-शक्ति काम कर रही है। जब विसल की आवाज़ लम्बी होती है, तो हम अनुभव कर रहे होते हैं, कि उसने ज़ंजीर को खींच कर रोका हुआ है। ज्यों २ आवाज़ मधम होती है, हमें उस का हाथ ज़ंजीर को ढीला छोड़ता हुआ प्रतीत हो रहा होता है। जब आवाज़ छोटे २ वक़्फ़ों में आती है, तो

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न देखते हुए भी, ज़ंजीर को जल्दी २ हिलाता हुआ उसका हाथ प्रत्यक्ष ही हमें अनुभव में आता है। और आवाज़ बन्द हो जाने पर उसका ज़ंजीर को छोड़ना और ढकने का बन्द हो जाना भी अनुभव होता है।

(२) हम जानते हैं, कि चाहे मोटर में टैंकी पिट्रोल से भरी हुई हो, ब्रेक भी लगी हुई न हो, तो भी मोटर अपने आप कभी नहीं चल सकती। आधा मील दूर, सड़क पर भागती हुई मोटर को देखकर हम मोटर के अन्दर steering को हाथों में पकड़े हुए ड्राइवर का अनुभव करते हैं, और जब वह हार्न करता है, तो न देखते हुए भी वह हार्न के रबड़ को दबाता हुआ हमें प्रत्यक्ष ही अनुभव होता है।

मनुष्य, पशु, पक्षी, हर एक प्राणिमात्र के शरीर जड़ हैं, और जैसा कि ऊपर के दो उदाहरणों में हम ने देखा, जड़ वस्तु अपने आप कोई भी हर्कत या चेष्टा नहीं कर सकती, जब तक चेतन शक्ति उसके पीछे न हो। मनुष्य का चलना, फिरना, उठना, बैठना, खाना, पीना इत्यादि कोई भी क्रिया, कोई भी चेष्टा, कोई विचार और कोई भी निश्चय हो ही नहीं सकता, जब तक इस जड़ शरीर को, इसके हृदय में विराजमान चेतन शक्ति, अन्तर्यामी रूप में प्रेरणा न दे। इसी प्रकार पशु, पक्षी, स्थलचर, नभचर, जलचर, छोटे से छोटे प्राणधारी कीटाणु में भी, जहां भी छोटी से छोटी हर्कत या क्रिया होती हम देखें, तो, हमें तत्काल ही हृदय रूप स्टीयरिंग पर बैठ कर शरीर रूप मोटर को

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चलाते हुए अन्तर्यामी रूप ड्राइवर का प्रयक्ष अनुभव करना चाहिए ।

जिस तरह इस जड़ शरीर को मैं (चेतन आत्मा) चला रहा हूं, उसी तरह दूसरे जड़ शरीरों को भी मैं ही चला रहा हूं, चाहे वह शरीर स्त्री का हो, पुरुष का हो, बच्चे का हो, बूढ़े का हो, हिन्दु का हो, मुसलिम का हो, सिख का हो, रूसी का हो, अमैरिकन का हो, अंग्रेज़ का हो, या जर्मन का हो। सब मनुष्य मात्र मेरा अपना आप हैं। बल्कि मेरी चेतन शक्ति ही कव्वे के गले से निकल कर "काएं, काएं" करती है । चिड़ियों के गले से निकल कर "चीं, चीं" करती है। शरीर चाहे छोटी से छोटी च्यूंटि का हैं, या बड़े से बड़े हाथी का, इन सब शरीरों में छोटी से छोटी हर्कत, इनमें प्राणों की गति, इनमें क्षुद्र से क्षुद्र विचार, भाव, संशय, निश्चय सब मेरी ही चेतनता के कारण हैं।

आनन्दता का अनुभव— सूर्य की धूप समान रूप से हर जगह पर और हर समय, चौबीसों घन्टे पड़ रही है। यदि कहीं साया होता है, तो बादल, पहाड़, वृक्ष, मकान, या और किसी रुकावट के कारण होता है । रात को धूप तो निरन्तर वैसे ही आ रही है, जैसे दिन को। यदि उसमें विघ्न पड़ जाता है, और अन्धेरा होता है, तो उसका कारण हमारी पृथिवी है, सूर्य का इसमें कोई दोष नहीं।। मान लीजिए मीलों तक फैला हुआ एक मैदान है, उसमें एक वृक्ष है। सूर्य की धूप तो सारे मैदान और वृक्ष पर समान रूप से पड़ रही

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है, परन्तु वृक्ष के पत्तों में से गुज़र कर आने वाली धूप, पत्तों की रुकावट के कारण मैदान में पड़ने वाली धूप से भिन्न प्रतीत होती है।

आनन्द भी धूप के समान हर समय, हर जगह पर, निरन्तर मौजूद है। यदि उसकी प्रतीती नहीं होती, तो उसका कारण हमारा अहंकार है, आनन्द का उसमें कोई दोष नहीं। जिस प्रकार वृक्ष के पत्तों में से गुज़र कर आने वाली धूप में अन्तर पड़ जाता है, वैसे ही विषयों में से गुज़र कर आने वाले आनन्द में भी अन्तर पड़ जाता है, और वही आनन्द विषयों की रुकावट के कारण सुख और दुःख में बटा हुआ सा प्रतीत होने लग पड़ता है।

इस लिए जहां कहीं भी हमें सुख की प्रतीती हो, या दुःख की, तो हमें तुरन्त ही उनके वास्तविक स्वरूप आनन्द तक पहुँच जाना चाहिए। और, जैसा कि हमने पांचवीं युक्ति के अभ्यास से अनुभव किया, कि आनन्द मुझ से भिन्न कहीं नहीं, हमें ऐसा प्रत्यक्ष करना चाहिए, कि यह सुख (अथवा दुःख) मेरी आनन्द रूपता के कारण ही है।

सत्ता का अनुभव— सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व संसार की कोई भी वस्तु नहीं थी, केवल आत्मा की (ब्रह्म की) सत्ता ही मौजूद थी। "आत्मा से ही आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की, जल से पृथिवी की, और पृथिवी से बनस्पति और प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति हुई"। इस प्रकार एक ही आदि कारण "मैं" (आत्मा, सच्चिदानन्द) सत्ता से ही सारे कार्य-वर्ग जगत की सत्ता का प्रादुर्भाव हुआ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वस्तुएं तो नाम मात्र ही हैं, जो सूक्ष्म से स्थूल, स्थूल से स्थूलतर और स्थूलतम होती हुई प्रतीत होती हैं। "कुर्सी" को देखने पर यद्यपि सत्ता एक स्थूल वस्तु (कुर्सी) की प्रतीत होती है, परन्तु इस (कुर्सी) के आदि-कारण से उत्पत्ति और उसी आदि-कारण में लय हो जाने पर ज़रा विचार करें, तो "कुर्सी" की सत्ता "मुझ" (आत्मा) से भिन्न कुछ भी नहीं, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होगा :-

उत्पत्ति	लय
यह आत्मा है (मैं)	*यह राख है
यह आकाश है	*यह पृथिवी है
यह वायु है	यह जल है
यह अग्नि है	यह अग्नि है
यह जल है	यह वायु है
यह पृथिवी है	यह आकाश है
यह वृक्ष है (इत्यादि लोहा, पीतल)	यह आत्मा है (मैं)
यह पत्ते हैं (वृक्ष के कट जाने पर)	
यह शाखा है	
यह जड़ है	
यह तख्ते हैं (जड़ के तख्ते बनने पर)	
यह कुर्सी है (इत्यादि लोहे, पीतल की चीज़ें)	
यह टांगे हैं (कुर्सी के टूट जाने पर)	
यह बाजू है	
यह सीट है	
यह बैक है	
*यह राख है (इनके जल जाने पर)	
*यह पृथिवी है (राख के मिट्टि में मिल जाने पर)	

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकार यह हैता (सत्ता) मैं (आत्मा) से ही शुरु हुई, और मैं (आत्मा) में ही वापस मिल कर मैं (आत्मा) ही हो गई। सो, किसी भी स्थूल वस्तु को देख कर हमें तुरन्त हीं यह अनुभव करना चाहिए, कि इसकी आदि सत्ता मैं ही हूं, अन्तिम सत्ता भी मैं हीं हूं, और इसकी मौजूदा सत्ता मेरी सत्ता के कारण ही है। मेरी सत्ता से भिन्न कुछ है ही नहीं ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपसंहार

आत्मैक्य ही शान्ति का एकमात्र उपाय

जिस formula का उपक्रम प्रश्न ७ के उत्तर में हुआ था, कि "जहां एक हो, वहां कोई झगड़ा नहीं बन सकता, वहां शान्ति है" गत छः युक्तियों पर अभ्यास कर के, अब हमें निश्चय हो गया, कि यह वेदान्तिक formula केवल formula नहीं, बल्कि यह तो एक ठोस सच्चाई है। "नेति, नेति" और "लय योग" की युक्तियों से practically हम ने अनुभव कर लिया, कि संसार की जड़, चेतन सब वस्तुओं का वास्तविक स्वरूप "मैं," केवल "मैं" ही हूं,। मुझ से भिन्न कुछ है ही नहीं। वह मैं किस से झगड़ा, ईर्षा, द्वेष, अथवा क्रोध करूंगा। ईर्षा, द्वेष, क्रोध इत्यादि आसुरी भाव ही तो संसार में अशान्ति का कारण हैं। इनके अभाव में ही शान्ति है।

संसार में शान्ति की स्थापना के लिए परिवार ही प्राथमिक आधार शिला है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग कर के इस "मैं" का विस्तार अपने परिवार के हर एक व्यक्ति में करना। माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पति सब मेरा ही स्वरूप हैं, इस लिए उनमें से किसी में भी द्वेष की वृत्ति का होना असम्भव हो जाएगा। इस प्रकार परिवार में शान्ति स्थापन हो जाने पर इसी आत्मैक्य वृत्ति का विस्तार अपने सम्बन्धियों और मतावलम्बियों तक करना चाहिए। इस से आगे इसको

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वजाति और स्वदेश तक बढ़ाया जाए, और इस से भी आगे संसार भर के मनुष्यमात्र में इस वृत्ति का विस्तार हो जाएगा, तो संसार भर के मनुष्यमात्र के हृदयों से ईर्षा, द्वेष, और क्रोध कम होते जाएगे और अन्त में द्यौलोक में शान्ति हो जाएगी, अन्तरिक्ष में शान्ति हो जाएगी, और पृथिवी पर सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो जाएगी। तब यह संसार मनुष्यमात्र बल्कि प्राणिमात्र के लिए

स्वर्गधाम, सुखधाम, आनन्द धाम

बन जाएगा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वत्र आत्मैक्य दर्शन

आइए, अन्त में अब हम श्री "महर जी" के शब्दों में "मैं" (या तु) का दर्शन सर्वत्र कर लें :-

या रब, गुलो गुल्ज़ार में, मैं ने तुझे देखा,
और वादिए पुर्ख़ार में, मैं ने तुझे देखा।

कहता तुझे कौन, कि तु पर्दा नशीं है ?
हर कूचा ओ बाज़ार में, मैं ने तुझे देखा।

ज़ाहिद के दिले पाक में, तु जल्वा नुमा है,
बदमस्तिए मैख़ार में, मैं ने तुझे देखा।

सेहत में तेरा जल्वा, शिफ़ा में भी तेरा जल्वा,
बीमारी ओ आज़ार में, मैं ने तुझे देखा।

यह भी हैं तु, वह भी हैं तु, गर चश्म हो बीना,
कफ्फ़ार में, दीन्दार में, मैं ने तुझे देखा॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नदी के बहाओं का गिल्ला बादल से

नोट :- स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में गीता भवन और बट वृक्ष के मध्य में गंगा के किनारे पर २२-६-५० को लेखक के एकान्त सेवन के समय पानी के बहाओं को देख कर (कविता बनाने की ओर कोई रुचि न होने पर भी) स्वतः ही निम्न रहस्य-पूर्ण कविता बन गई।

तर्ज़- दस चिन्ह धर्म के भाई, महाराज मनु बतलाते

ओ बादल बेदर्दा, तुम्हें ज़रा द न आया, ओ बादल बेदर्दा
अपनी महिमा में इस्थित थे, तुम्हें क्यों न भाया ! ,, ,, ,,
जिस तन लागे, सोई तन जाने। और क्या जाने पीर पराई !
तड़प बिरह की तुम क्या जानो, जिन्हें कभी जख़म नहीं आया।
प्रीतम से देकर के जुदाई, बुरी तरह भटकाया भाई,
कितनी बेदर्दी से ओहो ! पर्वत पर दे पटकाया। ओ बादल
तेरा क्या बिगड़ा ओ ज़ालिम ! विरह विलाप करें हम हरदम,
कारण से हम ऐसे बिछड़े, नहीं दीखे उनका साया। ओ बादल
अब देख दीवानी दौड़ हमारी, शक्ति लगा कर के अब सारी
नाम हमारा बदल ही देना, गर हम प्रीतम न पाया। ओ बादल

दृष्टान्त में	दार्ष्टान्तिक में
नदी का बहाओ	जीवात्मा
बादल	अहंकार, खुदी, (ego)
अपनी महिमा में	परमात्मा में
प्रीतम, कारण	परमात्मा
भटकाया	अन्यान्य योनियों में
पर्वत	माता का गर्भ
दीवानी दौड़	भरसक साधन

Bhagavan's Sri Sankaracharya Bharatiya Vidya Bhavan

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

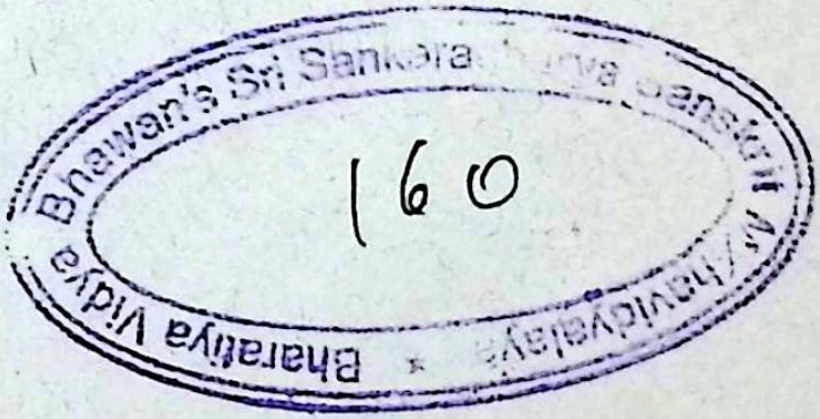

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE